परमागमसार

आचार्य श्री श्रुतमुनि

सम्पादन / अनुवाद
ब्र. विनोद जैन 'शास्त्री'
ब्र. अनिल जैन 'शास्त्री'

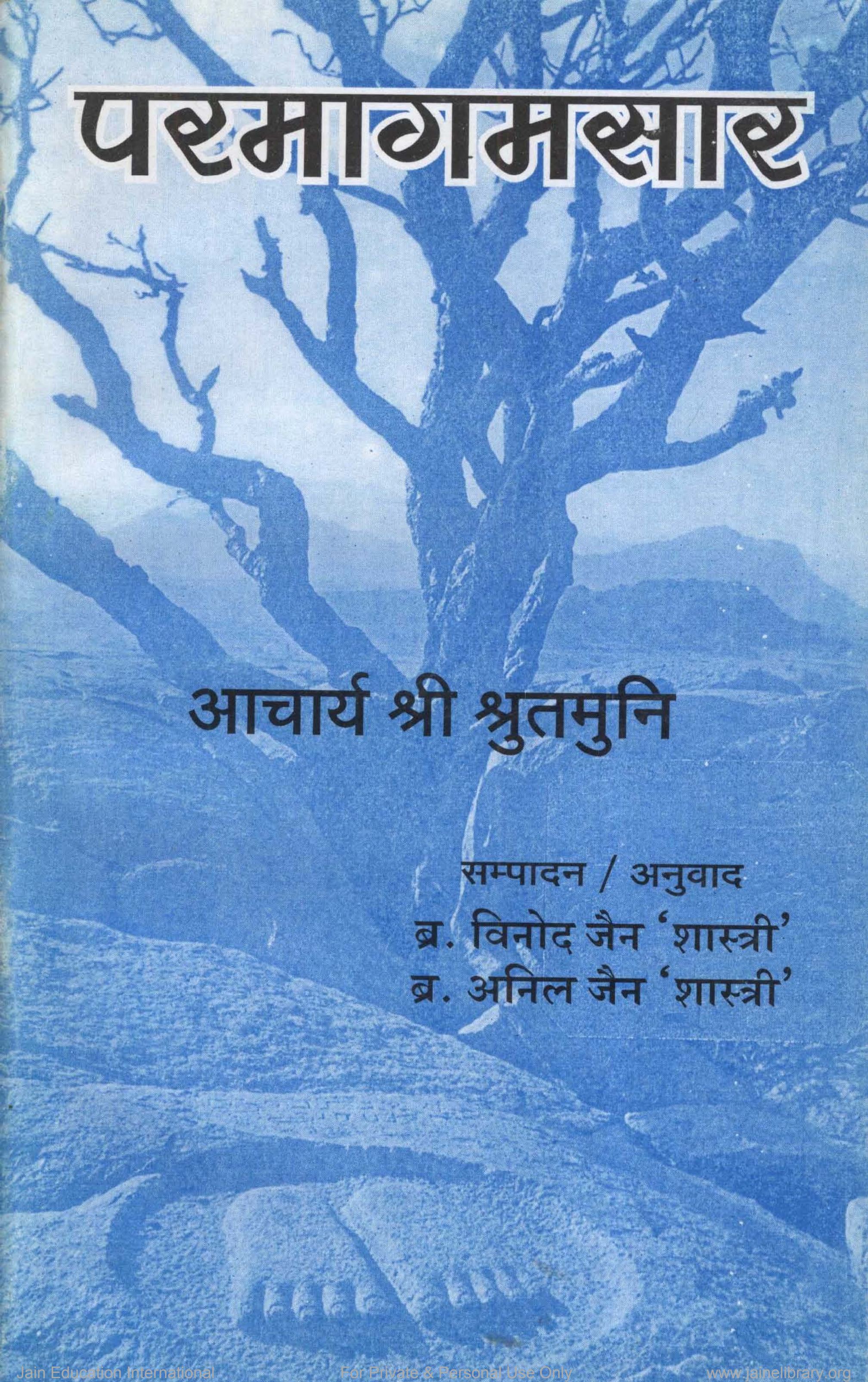

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमागमसारो

आचार्य श्रुतमुनि

अनुवाद /सम्पादन

ब्र. विनोद जैन, शास्त्री ब्र. अनिल जैन, शास्त्री

श्री वर्णी दिग. जैन, गुरुकुल

जबलपुर

प्रकाशक

श्री वर्णी दिग. जैन गुरुकुल, जबलपुर

श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र, पपौरा जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृति – परमागमसार

प्रणेता – आचार्य श्री श्रुतमुनि

अनुवाद/ संपादन – ब्र. विनोद जैन, पपौरा
ब्र.अनिल जैन, जबलपुर

संयोजन – ब्र. सुरेन्द्र जैन, "सरस"

प्रथम संस्करण – 1000 प्रतियाँ सहयोग राशि : 15/–

वीर निर्वाण सन् अक्टूबर 2000

सौजन्य :

1. श्री राजकुमार जैन, टैगोर नगर, रायपुर
2. श्री उत्तमचन्द्र जैन, राजेन्द्र नगर, रायपुर
3. श्री रमेशचंद्र जैन, रमण मंदिर वार्ड़, रायपुर
4. श्री रत्नावाई, व्रती आश्रम, जबलपुर
5. श्री अनुज जैन, चौन्ताला स्ट्रीट, सहारनपुर
6. श्री राजेन्द्र कुमार जैन, चौबे कॉलोनी रायपुर

मुद्रक – श्री पद्मावती ऑफसेट, जबलपुर
आफिस – 410015

कम्पोजिंग – लोटस कम्पूटर्स, मेडिकल, जबलपुर. फोन – 421598

प्राप्ति स्थल –

1. ब्र. जिनेश जैन, संचालक
श्री वर्णी दिग. जैन गुरुकुल
पिसनहारी मढ़िया,
जबलपुर (म. प्र.)

2. ब्र. विनोद कुमार जैन
श्री ऋषभ व्रती आश्रम
पपौरा जी, जि. टीकमगढ़
फोन :– 07683– 44378

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो सत्य का जीवन

में साक्षात्कार कर रहे है/करा रहे हैं।

उन्हें सादर समर्पित

ब्र. विनोद जैन
ब्र. अनिल जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हृदयोद्गार

आचार्य श्री श्रुतमुनि द्वारा विरचित "परमागम-सार" प्राकृत भाषा का अद्वितीय ग्रंथ है । इसमें जैन सिध्दांतो का अच्छा वर्णन हुआ है । इसका हिन्दी अनुवाद प्रथम बार श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल के ब्रह्मचारी विनोद कुमारजी एवं ब्र. अनिल कुमार जी ने किया है । हिन्दी अनुवाद हो जाने से सामान्यजन भी इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ से परिचय प्राप्त कर सकेगें । ब्रह्मचारी युगल की कर्त्तव्यशीलता प्रशंसनीय है । इन्होनें परमागम-सार के समान ही सिध्दांतसार, ध्यानोपदेश कोष, भावत्रिभङ्गी का भाषानुवाद भी किया है । आप दोनों के द्वारा धवला पारिभाषिक कोश, प्रकृति परिचय जैसी अनुपम कृतियों का भी संकलन किया गया है । ब्रह्मचारी युगल अभीक्ष्ण- ज्ञानोपयोगी हैं । आगामी काल में इसी प्रकार जिनवाणी की सेवा करते रहें ऐसी मनोभावना है ।

वीर निर्वाण महोत्सव
सन् 2000

विनीत
डॉ. प . पन्नालाल जैन
साहित्याचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य श्रुतमुनि

श्री डॉ . ज्योतिप्रसादजी ने 17 श्रुतमुनियोंका निर्देश किया है । पर हमारे अभीष्ट आचार्य श्रुतमुनि परमागमसार , भाव त्रिभङ्गी, आस्रव त्रिभङ्गी आदि ग्रन्थों के रचयिता हैं । ये श्रुतमुनि मूलसंघ देशीगण पुस्तकगच्छ और कुन्दकुन्द आम्नाय के आचार्य हैं । इनके अणुव्रतगुरु बालेन्दु या बालचन्द्र थे । महाव्रतगुरु अभयचन्द्र सिद्धान्तदेव एवं शास्त्रगुरु अभयसूरि और प्रभाचन्द्र थे । आस्रव त्रिभङ्गी के अन्तमें अपने गुरु बालचन्द्र का जयघोष निम्न प्रकार किया है-

इदि मग्गणासु जोगो पच्चयभेदो मया समासेण ।
कहिदो सुदमुणिणा जो भावइ सो जाइ अप्पसुहं ॥
पयकमलजुयलविणमियविणेय जणकयसुपूयमाहप्पो ।
णिज्जियमयणपहावो सो बालिंदो चिरं जयऊ ॥

आरा जैन सिद्धान्त भवन में भाव त्रिभङ्गी की एक ताड़पत्रीय प्राचीन प्रति है, जिसमें मुद्रित प्रतिकी अपेक्षा निम्नलिखित सात गाथाएँ अधिक मिलती हैं। इन गाथाओं पर से ग्रन्थ रचियता के समय के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है -

'' अणुवदगुरुबालेंदु महव्वदे अभयचंदसिद्धंति ।
सत्थेऽभयसूरि-पहाचंदा खलु सुयमुणिस्स गुरू ॥
सिरिमूलसंघदेसिय पुत्थयगच्छ कोंडकुंदमुणिणाहं (?) ।
परमण्ण इंगलेसबलम्मिजादमुणिपहद (हाण) स्स ॥
सिद्धन्ताहयचंदस्स य सिस्सो बालचंदमुणिपवरो ।
सो भवियकुवलयाणं आणंदकरो सया जयऊ ॥
सद्दागम-परमागम- तक्कागम- निरवसेसवेदी हु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजिदसयलण्णवादी जयउ चिरं अभयसूरिसिद्धंति ॥
णयणिक्खेवपमाणं जाणित्ता विजिदसयलपरसमओ ।
वरणिवइणिवहवंदियपयपम्मो चारुकित्तिमुणी ॥
णादणिखिलत्थसत्थो सयलणरिंदेहिं पूजिओ विमलो ।
जिणमग्गगमणसूरो जयउ चिरं चारुकित्तिमुणी ॥
वरसारत्तयणिउणो सुद्दं परओ विरहियपरभाओ ।
भवियाणं पडिबोहणयरो पहाचंदणाममुणी ॥

इन गाथाओं से स्पष्ट है कि देशीयगण पुस्तकगच्छ इंगलेश्वरबली के आचार्य अभयचन्द्र के शिष्य बालचन्द्रमुनि हुए । आचार्य अभयचन्द्र व्याकरण, परमागम, तर्क और समस्त शास्त्रों के ज्ञाता थे । इन्होंने अनेक वादियोंको पराजित किया था । गाथाओं में आये हुए आचार्यों पर विचार करने से इनके समय का निर्णय किया जा सकता है ।

श्रवणवेलगोला के अभिलेखों के अनुसार श्रुतमुनि अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य थे । इनके शिष्य प्रभाचन्द्र हुए और उनके प्रिय शिष्य श्रुतकीर्तिदेव हुए । इन श्रुतकीर्तिका स्वर्गवास शक संवत् 1306 (ई. सन् 1384) में हुआ । इनके शिष्य आदिदेव मुनि हुए । पुस्तकगच्छ के श्रावकों ने एक चैत्यालय का जीर्णोद्धार कराकर उसमें उक्त श्रुतकीर्ति की तथा सुमतिनाथ तीर्थङ्कर की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की थीं ।

बालचन्द्रमुनि ने श्रुतमुनि को श्रावकधर्म की दीक्षा दी थी । आस्रव त्रिभङ्गी और परमागमसार में श्रुतमुनि ने इनका स्मरण किया है । श्रुतमुनि का समय ई. सन् 13 वीं शताब्दी का अन्तिम भाग है। श्रुतमुनि की तीन रचनाएँ प्राप्त होती है -

1. परमागमसार 2. आस्रव त्रिभङ्गी 3. भाव त्रिभङ्गी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

''तच्चवियारो'' आचार्य वसुनन्दि विरचित का भाषानुवाद करते समय प्रस्तावना से यह ज्ञात हुआ, कि डॉ . गोकुलचंद जैन द्वारा आचार्य श्रुत मुनि विरचित परमागम–सार का संपादन भी किया गया है। जिसका भी अद्यावधि–पर्यंत हिन्दी –अनुवाद नहीं हुआ है।'' सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से मूल प्रति प्राप्त कर, हम दोनों ने 1998 में इस ग्रंथ का अनुवाद करना प्रारम्भ कर दिया था बीच में ध्यानोपदेश कोष, भाव त्रिभङ्गी आदि के अनुवाद और सम्पादन में व्यस्तता होने के कारण यह कार्य रुक गया। इस बार वर्षाकाल 2000 में इस कार्य को पूर्ण करने का विचार किया । फलस्वरूप कार्य प्रारम्भ किया आवश्यकता पड़ने पर आदरणीय डॉ.प. पन्नालाल जी साहित्याचार्य जी से सहयोग भी लिया। प. जी सहाब ने एक दो स्थलो पर पाठ संशोधन भी किया है। मूल पाठ टिप्पण मे दिये गये है ।'' यह ग्रन्थ प्रथम बार ही अनुवाद सहित प्रकाशित हो रहा है।

ग्रन्थ में प्रतिपाद्य विषय

कृतिकार ने ग्रन्थ में प्रतिज्ञारूप वचन में यह बतलाया है कि पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य , सप्त तत्त्व , नव पदार्थ, बंध स्वरूप, बंध कारण स्वरूप, मोक्ष स्वरूप और मोक्ष कारण स्वरूप इन आठ प्रकार के अधिकारों में जिनवचन विस्तार से निरूपित किये गये है किन्तु मैं उन्हीं अधिकारों का संक्षेप में विवेचन करूंगा (गाथा – 9–10)। इस प्रकार इस ग्रंथ में मुख्यता से नव पदार्थों का विवेचन किया गया है।

ग्रन्थ में विशेषताएँ

● पंचास्तिकाय, छह द्रव्य , सप्त तत्त्व, नव पदार्थ , बंध स्वरूप, बंध कारण स्वरूप, मोक्ष स्वरूप और मोक्ष कारण स्वरूप इसप्रकार आठ अधिकारों में कथन करने के पद्धति आपकी नवीन विधा ही है । यहाँ यह विचारणीय है कि नव पदार्थो तक विषय विवेचना तो योग्य है किन्तु नव पदार्थो के निरूपण के पश्चात् बंध स्वरूप, बंध कारण स्वरूप, मोक्ष स्वरूप, मोक्ष कारण स्वरूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन अधिकारों का पृथक् से निरूपण क्यों किया गया है ? नव पदार्थों की विवेचना तक ही इनका अन्तर्भाव कर लेना चाहिए था किन्तु ऐसा न कर ग्रंथकार ने बंध तत्त्व और बंध स्वरूप का कथन पृथक् रूप से ही किया है । बंध तत्त्व विवेचन में भावबंध , द्रव्यबंध, बंध के प्रकार, चतुर्विध बंध के कारण इनका निरूपण किया है। बंध स्वरूप के कथन में बंध का लक्षण कहा है। बंध कारण –स्वरूप में चार प्रकार के बंध में मिथ्यात्वादि प्रत्ययों का निरूपण किया है । इसी प्रकार मोक्ष तत्त्व के निरूपण में द्रव्य मोक्ष, भाव मोक्ष और मोक्ष अवस्था का कथन किया है। मोक्ष स्वरूप निरूपण में मोक्ष का लक्षण मात्र किया है । मोक्ष हेतु स्वरूप निरूपण में व्यवहार और निश्चय रूप दो प्रकार के मोक्ष केकारणों का निरूपण किया है। (गा. 9– 10)

- जीव को औदयिक, औपशमिक क्षायोपशमिक और क्षायिक भावों की अपेक्षा मूर्त कहा गया है तथा परमपारिणामिक भाव की अपेक्षा अमूर्तिक कहा गया है। (गा. 46–47)
- द्रव्यों के सामान्य – विशेष गुणों के विवेचन में सक्रिय और निष्क्रिय द्रव्यों का नामोल्लेख किया गया है।
- द्रव्यों के सामान्य – विशेष गुणों का विवेचन करते समय जीव के चेतनत्व, सक्रियत्व, अमूर्तत्व ये तीन विशेष गुण कहे गये हैं । (गा. 75)
- गाथा (98– 99) में क्षायोपशमिक एवं औदयिक भाव की शब्द संयोजना की अपेक्षा नवीन परिभाषायें उपलब्ध हैं ।

कर्मों के उदय के साथ चेतन गुणों का प्रगट होना क्षायोपशमिक भाव है। जो कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले कर्म के गुण (भाव) औदयिक भाव कहलाते हैं अर्थात् कर्मों के उदय से उत्पन्न होने वाले कर्म भाव औदयिक हैं।(गा. 98–99)

- आहारक शरीर की उत्कृष्ट स्थिति भिन्न मुहूर्त बतलायी है (गा. 12) अन्यत्र सिद्धान्त ग्रन्थों में उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।
- इस ग्रंथ की यह विशेष उपलब्धि समझनी चाहिये कि अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग के स्वामीयों का उल्लेख स्पष्ट रूप से गाथाओं में निम्न रूप से प्राप्त होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छतिये उवरुवरिं मंदत्तेणासुहोवओगो दु ।
अवदतिये सुद्धुवओगसादगुवरुवरि तारतम्मेण ।।
सुहउवओगो होदि हु तत्तो अपमत्तपहुदि खीणंते ।
सुद्धुवओगजहण्णो मज्झुक्कस्सो य होदि त्ति ।।

अर्थ- मिथ्यादृष्टि, सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में ऊपर-ऊपर मन्दता से अशुभ-उपयोग रहता है । उसके आगे असंयत सम्यग्दृष्टि, श्रावक और प्रमत्त संयत इन तीन गुणस्थानों में परम्परा से शुद्ध उपयोग का साधक ऊपर-ऊपर तारतम्य से शुभ उपयोग रहता है। तदनन्तर अप्रमत्त आदि गुणस्थान से क्षीणकषाय पर्यंत इन छह गुणस्थानों में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से शुद्ध उपयोग वर्तता है।

(गा. 187- 24, 25)

इस प्रकार का गाथाओं में स्पष्ट उल्लेख अन्यत्र ग्रंथो में अप्राप्य हैं।

इस प्रकार ग्रंथ में किचिंत विशेषताएँ उपलब्ध है । इस ग्रंथ का कार्य करते समय हम लोगों ने गुरुकुल पुस्तकालय का पूर्णतः उपयोग किया है । कार्य करते समय ब्र. जिनेश जी का अपूर्व सहयोग रहा। आपके द्वारा समस्त प्रकार की आवश्यक सुविधा प्रदान की गई जिससे हम लोगों का कार्य निर्विघ्न रुप से सम्पन्न हो गया। अतः ब्र. जिनेश जी के हम लोगों अत्यधिक कृतज्ञ है। हम लोगअपने शिक्षा गुरु डॉ. प. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं उन्हीं की कृपा से यह कृति अनुवादित / सम्पादित हो सकी। आशा है विद्वत् समाज के साथ- साथ जन सामान्य भी इस कृति से लाभान्वित हो सकेगें। यथासंभव इस कार्य को करते समय हम लोगों ने सावधानी रखी है फिर भी प्रमादवश कुछ त्रुटियाँ शब्द व अर्थ जन्य रह गई हो तो विज्ञजन हमें अवश्य ही सूचित करेगें जिससे भविष्य में उन गलतियों की पुनरावृत्ति न हो सके ।

वीर निर्वाण महोत्सव
सन् 2000

ब्र. विनोद कुमार जैन
ब्र. अनिल कुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

	गाथा संख्या	पृष्ठ संख्या
मङ्गलाचरण	1–7	1 – 3
प्रतिज्ञा वचन	8–10	3
पंचास्तिकाय निरूपण	11–14	3 – 4
षड्द्रव्य विवेचन	15–85	5 – 24
द्रव्य चूलिका	86–90	24 – 26
सप्त–तत्त्व– निरूपण	91–181	26 – 51
नवपदार्थ विवेचन	182–187	52 – 53
पदार्थ चूलिका	187–194	53 – 58
उपसंहार	195–197	59
ग्रंथकर्त्ता– प्रशस्ति	198–205	59 – 61

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरिसुयमुणिविरइदो

परमागमसारो

घाइचउक्कविरहिया अणंतणाणाइगुणगणसमिद्धा ।
चंदक्ककोडिभासिददिव्वंग जिणा जयंतु जगे[1] ॥1॥

अन्वय – घाइचउक्कविरहिया अणंतणाणाइगुणगणसमिद्धा चंदक्ककोडिभासिददिव्वंग जिणा जगे जयंतु ॥1॥

अर्थ – घातिया चतुष्क से रहित, अनंत ज्ञानादि गुणों के समूह से सहित, कोटि चन्द्रमा की कांति से सुशोभित है शरीर जिनका, ऐसे जिन संसार में जयवंत हों ।

दससहजादादिसया घाइक्खयदो दु संभवा दस हि ।
देवेहिं कयमाणा चोद्दस सोहंति वीरजिणे ॥2॥

अन्वय – हि वीरजिणे दससहजादादिसया घाइक्खयदो दु संभवा दस देवेहिं कयमाणा चोद्दस सोहंति ॥2॥

अर्थ – निश्चय से भगवान वीर जिनेन्द्र जन्मकृत दश अतिशयों से, घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न दस अतिशयों से तथा देवों के द्वारा किए जाने वाले चौदह अतिशयों से सुशोभित होते हैं ।

दिव्वज्झुणि सुरदुंदुहि छत्तत्तय सिंहविट्ठरं चमरं ।
राजंति जिणे वीरे भावलयमसोगकुसुमविट्ठी य ॥3॥

अन्वय – वीरे जिणे दिव्वज्झुणि सुरदुंदुहि छत्तत्तय सिंहविट्ठरं चमरं भावलयमसोगकुसुमविट्ठी य राजंति ॥3॥

अर्थ – वीर जिनेन्द्र के दिव्यध्वनि, सुरदुन्दभि, तीन छत्र, सिंहासन, चमर, आभामंडल, अशोक वृक्ष और पुष्प वृष्टि ये आठ प्रातिहार्य शोभायमान होते हैं ।

---

1. (1) जये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णट्ठट्ठकम्मणिवहा अट्ठगुणातीदणंतसंसारा ।
किदकिच्चा णिच्चसुहा सिद्धा लोयग्गगा देंतु ॥4॥

अन्वय – णट्ठट्ठकम्मणिवहा अट्ठगुणातीदणंतसंसारा किदकिच्चा णिच्चसुहा सिद्धा लोयग्गगा देंतु ॥4॥

अर्थ – आठ कर्मों के समूह के नाशक, आठ गुण अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्व आदि से युक्त, अनंत संसार से रहित, कृतकृत्य, नित्य सुख से युक्त सिद्ध परमेष्ठी भगवान लोकाग्र अर्थात् मोक्ष सुख को देवें ।

पंचाचारेसु सया सयंच जे आयरंति अण्णे हु ।
आयारयंति किवया आइरिया ते मुणेयव्वा ॥5॥

अन्वय – हु जे सया पंचाचारेसु सयंच आयरंति किवया अण्णे आयारयंति ते आइरिया मुणेयव्वा ॥5॥

अर्थ – निश्चय से जो सदाकाल पंचाचार अर्थात् दर्शनाचार आदि पाँच आचारों का स्वयं आचरण करते हैं तथा जो अन्य भव्य जीवों को दयावश पंचाचार आदि का आचरण कराते हैं, उन्हें आचार्य परमेष्ठी जानना चाहिए ।

रयणत्तयसंजुत्ता जिणुत्तपुव्वंगसुदपवीणा हु ।
मग्गुद्देसणकुसलोवज्झाया देंतु मे बोहिं ॥6॥

अन्वय – रयणत्तयसंजुत्ता जिणुत्तपुव्वंगसुदपवीणा हु मग्गु-द्देसणकुसलोवज्झाया में बोहिं देंतु ॥6॥

अर्थ – रत्नत्रय से युक्त, जिनेन्द्र के द्वारा कथित पूर्व और अंगरूप श्रुत में प्रवीण, मार्ग और उपदेश में कुशल ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी मुझे बोधि प्रदान करें ।

सयलगुणसीलकलियो सद्दंसणणाणचरणसंपुण्णो ।
साधयदि साधुगणो तदुवायं देउ मे णिच्चं ॥7॥

अन्वय – सयलगुणसीलकलियो सद्दंसणणाणचरणसंपुण्णो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधुगणो साधयदि में तदुवाचं णिच्चं देउ।

अर्थ – सम्पूर्ण गुण और शील से सहित, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र से युक्त मोक्षमार्ग का साधु समूह साधन करते हैं। ऐसे वे साधु गण मुझे मोक्षमार्ग के उपाय को नित्य देवें।

एवं पंचगुरूणं वंदित्ता भवियणिबहबोहत्थं।
परमागमस्स सारं वोच्छे हं तच्चसिद्धियरं ॥8॥

अन्वय – एवं पंचगुरुणं वंदित्ता भवियणिबहबोहत्थं तच्चसिद्धियरं परमागमस्स सारं हं वोच्छे।

अर्थ – इस प्रकार पंच गुरुओं को नमस्कार करके भव्य जीवों के समूह को बोध कराने के लिए तत्त्व की सिद्धी को करने वाला परमागम का सार मैं कहूँगा।

पंचत्थिकाय दव्वं छक्कं तच्चाणि सत्त य पदत्था।
णव बंधो तक्कारण मोक्खो तक्कारणं चेदि ॥9॥
अहियारो अट्ठविहो जिणवयणणिरूविदो सवित्थरदो।
वोच्छामि समासेण य सुणुय जणा दत्त चित्ता हु ॥10॥

अन्वय – पंचत्थिकाय छक्कं दव्वं सत्त तच्चाणि य णव पदत्था बंधो तक्कारण मोक्खो तक्कारणं इदि अट्ठविहो अहियारा जिणवयण सवित्थरदो णिरूविदो समासेण वोच्छामि जणा दत्तं चित्ता हु सुणुय।

अर्थ – पंचास्तिकाय , छह द्रव्य, सात तत्त्व और नव पदार्थ, बंध स्वरूप, बंध के कारणभूत प्रत्यय, मोक्ष स्वरूप और मोक्ष के कारणभूत उपायों को इस प्रकार इन आठ प्रकार के अधिकारों को जिनेन्द्र के वचन अर्थात् जिनवाणी विस्तार से निरूपण करती है। उसे मैं संक्षेप से कहूँगा भव्यजीवों ! सावधान होकर सुनो।

जीवा हु पुग्गला वि य धम्माधम्मा तहेव आयासं।
संति जदो तेणेदे अत्थि त्ति वदंति तच्चण्हू ॥11॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वय – जीवा हु पुग्गला वि य धम्माधम्मा तहेव आयासं संति जदो तच्चण्हू तेणेदे अत्थि त्ति वदंति।

अर्थ – जीव , पुद्गल, धर्म , अधर्म और आकाश (सत् रूप) हैं। इसलिये तत्त्वज्ञाता इनको अस्ति इस प्रकार कहते हैं।

जम्हा बहूपदेसा तम्हा काया हवंति णियमेण।
जीवादिगा य एदे पंचत्थिकाय सण्णिदा तत्तो ॥12॥

अन्वय – जम्हा बहुपदेसा णियमेण तम्हा काया हवंति तत्तोय जीवादिगा एदे पंचत्थिकाय सण्णिदा।

अर्थ – जिस कारण से उन द्रव्यों में बहुत प्रदेश नियम से हैं। इसलिए वे कायवान् होते हैं। इसीलिये ये जीवादि पाँच द्रव्य पंचास्तिकाय संज्ञा को प्राप्त हैं अर्थात् पंचास्तिकाय कहलाते हैं।

जीवेऽसंखपदेसा संखासंखा तहा अणंता य।
मुत्ते तिविहपदेसा धम्मदुगे लोयमिददेसा ॥13॥

अन्वय – जीवेऽसंखपदेसा मुत्ते तिविहपदेसा संखासंखा तहा अणंता य धम्मदुगे लोयमिददेसा।

अर्थ – जीव में असंख्यात प्रदेश , पुद्गल द्रव्य में तीन प्रकार के प्रदेश संख्यात, असंख्यात तथा अनंत , धर्म और अधर्म द्रव्य में लोक के समान (असंख्यात) प्रदेश होते हैं।

आगासे हु अणंता पदेससंखा हवंति कालस्स।
जेण दु एगपदेसा तेण ण सो कायसण्णिदो होइ ॥14॥

अन्वय – हु आगासे पदेससंखा अणंता हवंति जेण दु कालस्स एगपदेसा तेण सो कायसण्णिदो ण होइ।

अर्थ – आकाश के प्रदेशों की संख्या अनंत है जिस कारण काल द्रव्य एक प्रदेशी है , उस कारण वह (काल) काय संज्ञक नहीं है।

इति पंचास्तिकायस्वरूपनिरूपणम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवो पुग्गलधम्माधम्मागासा य कालमिदि छक्कं ।
दविदं दवदि दविस्सदि इदि दव्वं वण्णिदं समये ।।15।।

अन्वय – जीवो पुग्गलधम्माधम्मागासा य कालमिदि छक्कं दविदं दवदि दविस्सदि इदि दव्वं वण्णिदं समये ।

अर्थ – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये द्रव्य हैं। (जो गुण और पर्यायों के द्वारा) प्राप्त हुआ है, हो रहा है और होगा वह द्रव्य है ऐसा आगम में कहा गया है।

उक्तं च –

1. **✱"पाणेहि चदुहि जीवदि जीविस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं ।**
जीवो पाणाणि पुणो बलमिंदियमाउ उस्सासो ।।"

अर्थ – जो चार प्राणों के द्वारा वर्तमान में जीवित है, भविष्य में जीयेगा और पूर्व में जिया था, वह जीव है। चार प्राण बल, इंद्रिय, आयु और श्वासोच्छ्वास हैं।

(पंचास्तिकाय 30)

दंसणणाणी जीवो पूरणगलणा हु पोग्गलो होदि ।
गदिपरिणदिजुदचेदण मुत्ताणं धम्म गदि हेदू ।।16।।
ठिदिपरिणदिजुदचेदण मुत्ताणमधम्मदव्व ठिदि हेदू ।
अवगासदाणजोग्गं आगासं सव्वदव्वाणं ।।17।।
कालस्सेवं लक्खणमिह सव्वेसिं च जाण दव्वाणं ।
पज्जायाणं परिवट्टणस्स हेदु इदि सुत्तम्ही ।।18।।

अन्वय – जीवो दंसणणाणी पोग्गलो पूरणगलणा होदि गदि - परिणदिजुदचेदण मुत्ताणं गदि हेदू धम्म ठिदिपरिणदिजुदचेदण मुत्ताण ठिदि हेदू अधमदव्व सव्वदव्वाणं अवगासदाणजोग्गं आगासं कालस्सेवं पज्जायाणं परिवट्टणस्य हेदु इदि सुत्तम्ही सव्वेसिं दव्वाणं लक्खणमिह जाण ।

अर्थ – जीव दर्शन और ज्ञान स्वभाव वाला, पुद्गल द्रव्य पूरण गलन स्वभाव वाला है। गति क्रिया से परिणत जीव और पुद्गलों को जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गति में हेतु है वह धर्म द्रव्य है। स्थिति क्रिया को परिणत जीव और पुद्गल द्रव्यों जो स्थिति में हेतु है, वह अधर्म द्रव्य है। सभी द्रव्यों को जो अवकाश अर्थात् ठहराने में समर्थ है वह आकाश द्रव्य है, काल द्रव्य भी पर्यायों के परिवर्तन में कारण है। इस प्रकार सूत्र में (से) सभी द्रव्यों के लक्षण जानो।

विशेषेण द्रव्यलक्षणमाह –

चेदा उवओगजुदो मुत्तिविरहिदो सदेहमाणो दु।
कत्ता भोत्ता संसारत्थो पुण उड्ढगई सिद्धो ॥19॥

अन्वय – चेदा उवओगजुदो मुत्तिविरहिदो सदेहमाणो दु कत्ता भोत्ता संसारत्थो पुण उड्ढगई सिद्धो।

अर्थ – जीव उपयोग गुण से युक्त, अमूर्तिक, अपनी देह के प्रमाण, कर्त्ता, भोक्ता, संसारी, ऊर्ध्वगति स्वभाव वाला और सिद्ध है।

जीवो रूवि अरूवि पोग्गलदव्वं तु रूवि णियमेण।
धम्मादी चत्तारो अरूविणो सव्वदा होंति ॥20॥

अन्वय – जीवो रूवि अरूवि पोग्गलदव्वं तु णियमेण रूवि धम्मादी चत्तारो सव्वदा अरूविणो होंति।

अर्थ – जीव रूपी और अरूपी दोनों प्रकार का, पुद्गल द्रव्य नियम से रूपी तथा धर्मादि चार द्रव्य अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल हमेशा से अरूपी हैं।

संसारत्थो जीवो रूवि सिद्धा अरूविणो होंति।
कम्मतयणिम्मुक्का अणंतणाणाइ गुणकलिया ॥21॥

अन्वय – कम्मतयणिम्मुक्का अणंतणाणाइ गुणकलिया संसारत्थो जीवो रूवि सिद्धा अरूविणो होंति।

अर्थ – संसार में स्थित जीव रूपी तथा द्रव्यकर्म, भावकर्म एवं नोकर्म इन तीन कर्मों से रहित, अनंतज्ञानादि गुणों से युक्त सिद्ध जीव अरूपी होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वण्णरसगंधफासणवंतो खलु रूवि लक्खणं एदं ।
रूवि चलियो णियमा अरूविणो णिच्चला होंति ।।22।।

अन्वय – खलु वण्णरसगंधफासणवंतो एदं रूवि लक्खणं रूवि णियमा चलियो अरूविणो णिच्चला होंति ।

अर्थ – निश्चय से वर्ण, रस, गंध और स्पर्श यह रूपी द्रव्य अर्थात् पुद्गल द्रव्य का लक्षण है । पुद्गल द्रव्य नियम से क्रियावान् अथवा गमनशील और अरूपी द्रव्य अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल स्थिर या निश्चल होते हैं ।

वसुधा तोयं छाया चउक्खअविसय कम्म परमाणू ।
एवं पोग्गलदव्वं छव्विहमिदि आगमुद्दिट्ठं ।।23।।

अन्वय – वसुधा तोयं छाया चउक्खअविसय कम्म परमाणू एवं पोग्गलदव्वं छव्विहमिदि आगमुद्दिट्ठं ।

अर्थ – पृथ्वी , जल, छाया, चक्षुइन्द्रिय से अगोचर पदार्थ अर्थात् हवा आदि , कार्मण वर्गणायें और परमाणु इसप्रकार पुद्गल द्रव्य आगम में छह प्रकार का कहा गया है ।

थूलंथूलं थूलं च थूलसुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं च सुहुमसुहुमं धरादियं होदि छवियप्पं ।।24।।

अन्वय – थूलंथूलं थूलं च थूलसुहुमं च सुहुमथूलं च सुहुमं च सुहुमसुहुमं धरादियं छवियप्पं होदि ।

अर्थ – स्थूल -स्थूल ,स्थूल , स्थूल-सूक्ष्म , सूक्ष्म-स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्म-सूक्ष्म इस प्रकार पृथ्वी आदि के छह भेद होते हैं ।

जं पोग्गलं तु छेत्तुं भेत्तुं चाणत्थणेदुमवि सक्कं ।
तं बादरबादरमिदि सण्णा होदि त्ति णिद्दिट्ठं ।।25।।

अन्वय –जं पोग्गलं छेत्तुं भेत्तुं च अणत्थणेदुमवि सक्कं तं बादरबादरमिदि सण्णा होदि त्ति णिद्दिट्ठं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ – जिस पुद्‌गल द्रव्य का छेदना, भेदना और एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना सम्भव है, उसकी बादर-बादर संज्ञा होती है। इस प्रकार आगम में कहा गया है।

छेत्तुं भेत्तुमसक्कं जमुवायेणण्णत्थणेदुमवि सक्कं।
तं बादरमिदि सण्णा णायव्वा तच्चकुसलेहिं ॥26॥

अन्वय – छेत्तुं भेत्तुमसक्कं जमुवायेणण्णत्थणेदुमवि सक्कं तं बादरमिदि सण्णा तच्चकुसलेहिं णायव्वा।

अर्थ – जिन पुद्‌गलों का छेदना, भेदना अशक्य है। जिन्हें अन्य उपायों के द्वारा अन्यत्र ले जाना शक्य है, उन पुद्‌गल स्कन्धों की बादर यह संज्ञा तत्त्व में कुशल मनुष्यों को जानना चाहिये।

जं छेत्तुं भेत्तुं खलु असक्कमण्णत्थणेदुमवि णो सक्कं।
तत्थूलसुहुमपुग्गलमिदि णेयं सुत्तजुत्तीहिं ॥27॥

अन्वय – सुत्तजुत्तीहिं जं खलु छेत्तुं भेत्तुं असक्कमण्णत्थणेदुमवि णो सक्कं तत्थूलसुहुमपुग्गलमिदि णेयं।

अर्थ – सूत्र ज्ञान से युक्त पुरुषों के द्वारा जिन पुद्‌गल स्कन्धों का निश्चय से छेदना, भेदना अशक्य है तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना अशक्य है, उन पुद्‌गल स्कन्धों को स्थूल-सूक्ष्म जानना चाहिये।

जं चक्खूणमविसयं विसयं सेसिंदियाण–णियमेण।
तं सुहुमथूलपुग्गलमिदि णादव्वं जिणोवदेसेण ॥28॥

अन्वय – जिणोवदेसेण जं चक्खूणमविसयं सेसिंदियाण णियमेण विसयं तं सुहुमथूलपुग्गलमिदि णादव्वं।

अर्थ – जिनेन्द्र भगवान के उपदेश से जो पुद्‌गल स्कन्ध चक्षुरिन्द्रिय के विषय नहीं बनते तथा चक्षुरिन्द्रिय को छोड़कर शेष इन्द्रियों के अर्थात् स्पर्शन, रसना आदि इन्द्रियों के नियम से विषय बनते हैं, उन्हें सूक्ष्म-स्थूल पुद्‌गल जानना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देसपरमोहिविसयं तं सुहुमं पोग्गलं भणंति जिणा ।
जं सव्वोहिविसयं तं रूवि सुहुमसुहुममिदि जाणे ।।29।।

अन्वय – जिणा देसपरमोहिविसयं तं सुहुमं पोग्गलं भणंति जं सव्वोहिविसयं तं रूवि सुहुमसुहुममिदि जाणे ।

अर्थ – जिनेन्द्र देव, जिन पुद्गल स्कन्धों को देशावधि और परमावधि ज्ञान वाले विषय करते हैं , उनको सूक्ष्म पुद्गल कहते हैं , और जो सर्वावधि ज्ञान का विषय है उसे सूक्ष्म-सूक्ष्म पुद्गल जानना चाहिये ।

जीवा वट्टंति सया अण्णोण्णुवयारदो दु जीवाणं ।
पुग्गलदव्वं देहाणपाणमणवयणरूवेण ।।30।।
सुहदुक्खसरूवेण य जीवियमरणोवयारयं कुणइ ।
गदि ठाणोग्गहवत्तणकिरियुवयारो दु धम्म चऊ ।।31।।

अन्वय – जीवा सया अण्णोण्णुवयारदो दु वट्टंति पुग्गलदव्वं देहाणपाणमणवयणरूवेण जीवियमरणोवयारयं जीवाणं उवयारयं धम्म चऊ गदि ठाणोग्गहवत्तणकिरियुवयारो हु कुणइ ।

अर्थ – जीव सदाकाल एक दूसरे जीवों के उपकार में वर्तन करते हैं । पुद्गल द्रव्य देह, श्वासोच्छ्वास, मन , वचन रूप से , सुख-दुःख रूप से और जीवन-मरण आदि से जीवों का उपकार तथा धर्मादिक चार अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य क्रमशः गति, स्थिति, अवकाश और वर्तना क्रिया के द्वारा उपकार करते हैं ।

लोकिज्जंते जीवादय अत्था जम्हि सो हु लोगो त्ति ।
उच्चदि तत्तो बाहिमलोगागासं ते ण हु[1] अण्णे ।।32।।

अन्वय – जम्हि जीवादय अत्था लोकिज्जंते हु सो लोगो त्ति तत्तो बहिमलोगागासं उच्चदि ते ण हु अण्णे।

अर्थ – जिसमें जीवादि द्रव्य देखे जाते हैं, निश्चय से वह लोक है । उससे बाहर अलोकाकाश कहलाता है । उस अलोकाकाश में अन्य जीवादि द्रव्य नहीं पाये जाते हैं ।

---

32. (1) तणहु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्तं च –

2. ✳ "अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासम·ण्णमण्णस्स ।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सहावं ण विजहंति ।।"

अर्थ – जीवादि छह द्रव्य यद्यपि परस्पर एक दूसरे में प्रवेश कर रहे हैं। एक दूसरे को अवकाश दे रहे हैं और निरन्तर एक दूसरे से मिल रहे हैं तथापि अपना स्वभाव नहीं छोड़ते हैं।

(पंचास्तिकाय 7)

जीवाणंताणंता जीवादो पोग्गला अणंतगुणा ।
धम्मतियं एगेगं लोयपदेसप्पमाकालो ।।33।।

अन्वय – जीवाणंताणंता जीवादो पोग्गला अणंतगुणा धम्मतियं एगेगं कालो लोयपदेसप्पमा ।

अर्थ – जीव अनंतानत, जीव द्रव्य से पुद्गल अनंतानंत गुणित, धर्म, अधर्म और आकाश एक-एक अखण्ड द्रव्य और काल द्रव्य लोक के प्रदेश के बराबर जानना चाहिये ।

लोयपदेसेगेगे एगेगा संठिया हु जे मुक्खा ।
कालाणू ते सव्वे मिलिदा वि असंखमाणा हु ।।34।।

अन्वय – लोयपदेसेगेगे जे मुक्खा कालाणू एगेगा संठिया ते सव्वे मिलिदा असंखमाणा हु ।

अर्थ – लोक के प्रदेशों पर अर्थात् एक-एक प्रदेश पर जो एक-एक स्वतंत्र कालाणु स्थित हैं। वे सभी कालाणु मिलने पर असंख्यात प्रमाण हैं।

समयावलि उस्सासा थोवलवाणालियामुहुत्तदिणं ।
पक्खमासो दु अयणा वरिसजुगादी य ववहारो ।।35।।

अन्वय– समयावलि उस्सासा थोवलवाणालियामुहुत्तदिणं दु पक्खमासो अयणा य वरिसजुगादी ववहारो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ – समय , आवली, उच्छवास, स्तोक, लव, नाली, मुहुर्त, दिन, पक्ष, मास, अयन, वर्ष और युग रूप व्यवहार काल जानना चाहिये। उक्तं च ञयं –

3. ✱ **''आवलि असंखसमया संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो।**
सत्तुस्सासो थोबो सत्तत्थोबो लबो भणियो ।।''

अर्थ – असंख्यात समयों की एक आवली, संख्यात आवलियों का समूह एक उच्छ्वास, सात उच्छ्वासों का एक स्तोक , सात स्तोकों का एक लव कहा गया है।

(गो. जी. 574)

4. ✱ **''अड्तीसद्धलवा णाली वेणालिया मुहुत्तं तु।**
एगसमयेण हीणं भिण्णमुहुत्तं तदो सेसं ।।''

अर्थ – अड़तीस लवों की एक नाली , दो नालियों का एक मुहूर्त्त और मुहूर्त से एक समय कम भिन्नमुहूर्त होता है। इसके आगे दो , तीन, चार आदि समय कम करने से अन्तर्मुहूर्त के भेद होते हैं।

(गो. जी. 575)

5. ✱ **''ससमयमावलि अवरं समयूणमुहुत्तयं तु उक्कस्सं।**
मज्झासंखवियप्पं वियाण अंतोमुहुत्तमिणं ।।''

अर्थ – एक समय सहित आवली प्रमाण काल को जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। एक समय कम मुहूर्त को उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। इन दोनों के मध्य के असंख्यात भेद हैं। उन सब को भी अन्तर्मुहूर्त ही जानना चाहिये।

(गो. जी. 576)

तीसमुहुत्तं दिण तप्पण्णरसो पक्ख तद्दुगो मासो।
तद्दुगमुडु तत्तिदयं अयणं तज्जुगलवरिसो दु ।।36।।

अन्वय– तीसमुहुत्तं दिण तप्पण्णरसो पक्ख तद्दुगो मासो तद्दुगमुडुतत्तिदयं अयणं तज्जुगलवरिसो दु।

अर्थ – तीस मुहूर्त का एक दिन, पन्द्रह दिनों का एक पक्ष, दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पक्षों का एक मास, दो महीनों की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन और दो अयनों का एक वर्ष जानना चाहिये।

पणवरिसा जुगसण्णा तज्जुगलं दस वरिस तत्तो दु।
दसदसगुणसदवरिसो सहस्सदससहस्सलक्खं तु ॥37॥
लक्खं चउसीदिगुणं पुव्वंगं होदि तं पि गुणिदव्वं।
चदुसीदीलक्खेहिं पुव्वं णामं समुद्दिट्ठं ॥38॥

अन्वय– पणवरिसा जुगसण्णा तज्जुगलं दस वरिस तत्तो दु दसदसगुणसदवरिसो सहस्सदससहस्सलक्खं तु लक्खं चउसीदिगुणं पुव्वंगं होदि तं पि गुणिदव्वं चदुसीदीलक्खेहिं पुव्वं णामं समुद्दिट्ठं ।

अर्थ – पाँच वर्षों की युग संज्ञा, दो युगों के दस वर्ष होते हैं। इन दस वर्षों को दस से गुणा करने पर शत (सौ) वर्ष और शत वर्ष को दस से गुणा करने पर सहस्र (हजार) वर्ष, सहस्र वर्ष को दस से गुणा करने पर दस-सहस्रवर्ष और दस- सहस्र वर्ष को दस से गुणा करनेपर लक्ष (लाख) वर्ष , एक लाख वर्ष को 84 से गुणा करने पर एक पूर्वाङ्ग तथा 84 लाख वर्ष अर्थात् एक पूर्वाङ्ग को 84 लाख से गुणा करने पर जो राशि प्राप्त होती है वह पूर्व कहलाती है।

उक्तं च –

6. ✳ ''पुव्वस्स दु परिमाणं सदरिं खलु कोडिसदसहस्साइं।
छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वासगणणाए[1] ॥''

- **अर्थ –** एक पूर्व कोटि का प्रमाण सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष जानना चाहिये।

(सर्वार्थसिद्धि 3 – 31)

इच्चेवमादिगो जो ववहारो वण्णिदो समासेण।
तस्सेव य वित्थारं जिणुत्तसत्थम्हि जाणाहि ॥39॥

अन्वय – इच्चेवमादिगो जो ववहारो समासेण वण्णिदो य तस्सेव वित्थारं जिणुत्तसत्थम्हि जाणाहि ।

6.✳ (1) वासकोड़ीण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ – इस प्रकार आदि में जो व्यवहार काल संक्षेप से वर्णित किया उसी का विस्तार जिनेन्द्र भगवान के द्वारा निरूपित शास्त्र से जानना चाहिये।

तिवियप्पो ववहारो तीदो पुण वट्टमाणगो भावी।
तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणं तु ॥40॥

अन्वय – तिवियप्पो ववहारो तीदो वट्टमाणगो भावी पुण तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणं तु।

अर्थ – तीन भेद वाला व्यवहार काल-अतीतकाल, वर्तमान काल और भविष्य काल रूप है। अतीत काल संख्यात आवलियों से गुणित सिद्धों के प्रमाण जानना चाहिये।

समओ दु वट्टमाणो चेदादो णिहल मुत्तिदव्वादो।
भविसो अणंतगुणिदो इदि ववहारो हवे कालो ॥41॥

अन्वय – वट्टमाणो दु समओ णिहल चेदादो मुत्तिदव्वादो भविसो अणंतगुणिदो इदि ववहारो कालो हवे।

अर्थ – वर्तमान काल एक समय प्रमाण है समस्त जीव राशि तथा समस्त मूर्तिक (पुद्गल द्रव्य) से भविष्यत काल अनंत गुना है। इस प्रकार व्यवहार काल का प्रमाण होता है।

चेयणमचेयणं तह मुत्तममुत्तं अखंड खंडं च।
सक्किरियं णिक्किरियं एयपदेसी बहुप्पदेसी य ॥42॥
तह य विहावसहावा वावगमव्वावगं च सामण्णं।
अह य विसेसो हेयोवादेयगुणा हु दवियाणं ॥43॥

अन्वय – दवियाणं चेयणमचेयणं तह मुत्तममुत्तं अखंड खंडं च सक्किरियं णिक्किकरयं एयपदेसी बहुप्पदेसी य तह य विहावसहावा वावगमव्वावगं च सामण्णं अह य विसेसो हेयोवादेयगुणा सामण्णं विसेसो।

अर्थ – द्रव्यों में चेतन-अचेतन , मूर्त-अमूर्त, अखंड(अभेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप)- खंड(भेद रूप), सक्रिय-निष्क्रिय, एकप्रदेशी-बहुप्रदेशी , विभाव-स्वभाव, व्यापक-अव्यापक और हेय-उपादेय इत्यादि सामान्य और विशेष गुण होते हैं।

तेसु य जीवो चेयणमियरा पुण पणमचेयणा णेया ।
चेदयदीदि हु चेदण हियमहियं जो ण जाणादि ।।44।।
सो हु अचेयणणामो जीवो मुत्तं तहा अमुत्तं च ।
कम्मत्तयसंजुत्तो जीवो ववहारदो मुत्तो ।।45।।
कम्मविरहिदो णिच्चयणयेण सो वि य अमुत्तसण्णो हु ।
अह ओदइय्युवसमियक्खओवसमियं खु भावं च ।। 46।।
तह अव्वत्तं खाइयभावं च पडुच्च मुत्तणामा य ।
णियपरमपारिणामियभावं पडि मुत्तिरहिदो य ।।47।।

अन्वय – तेसु य जीवो चेयणं पुण इयरा पणमचेयणा णेया चेदयदीदि हु चेदण जो हियमहियं ण जाणादि सो हु अचेयणणामो जीवो मुत्तं तहा अमुत्तं च कम्मत्तयसंजुत्तो जीवो ववहारदो मुत्तो णिच्चयणयेण कम्मविरहिदो सो वि य अमुत्तसण्णो हु अह ओदइय्युवसमियक्खओवसमियं खु भावं खाइयभावं पडुच्च मुत्तणामा य अव्वत्तं णियपरमपारिणामियभावं पडि मुत्तिरहिदो य ।

अर्थ – उन छहों द्रव्यों में जीव चेतन तथा अवशेष अर्थात् जीव को छोड़कर पाँच द्रव्य अचेतन जानना चाहिये। जो चेतता (जानता , देखता) है वह चेतन द्रव्य है। जो हित-अहित नहीं जानता है उसे अचेतन जानना चाहिए। वह जीव मूर्त और अमूर्त है। द्रव्यकर्म, भावकर्म और नो कर्म से संयुक्त है ऐसा जीव व्यवहार नय से मूर्तिक है। निश्चयनय से कर्म से रहित जीव अमूर्त संज्ञक है अथवा औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक भावों की अपेक्षा से जीव मूर्तिक तथा अव्यक्त निज परमपारिणामिक भाव की अपेक्षा अमूर्तिक है।

अह मुत्तो संसारी मुत्तो जीवो सया अमुत्तो हु ।
पुग्गलमेव हि मुत्तो धम्मचऊ होंति हु अमुत्तो ।।48।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वय – मुत्तो संसारी मुत्तो जीवो सया अमुत्तो अह हि पुग्गलमेव मुत्तो हु धम्मचऊ अमुत्तो हु होंति ।

अर्थ – संसारी जीव मूर्तिक और मुक्त जीव सदा अमूर्त है । निश्चय से पुद्गल द्रव्य मूर्त तथा धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य अमूर्तिक होते हैं।

वण्णचउक्केण जुदो मुत्तो रहिदो अमुत्ति सण्णो हु ।
एगं जीवमखंडं णाणाजीवं पडुच्च खंडाणि ।।49।।

अन्वय – वण्णचउक्केण जुदो मुत्तो रहिदो अमुत्ति सण्णो हु एगं जीवमखंडं णाणाजीवं पडुच्च खंडाणि ।

अर्थ – वर्ण, रस, गंध , स्पर्श इन चारों से युक्त मूर्तिक और इन चार अर्थात् वर्ण, रस, गंध, स्पर्श से रहित अमूर्तिक संज्ञक हैं । एक जीव की अपेक्षा जीव अभेदरूप अर्थात् अखंड है , नाना जीवों की अपेक्षा खंड अर्थात् भेद रूप जानना चाहिए ।

जलअणलादिहि णासं ण यादि जो पुग्गलो हु परमाणू ।
सो उच्चदे अखंडो णाणाणू होंति [1]खंडाणि ।।50।।

अन्वय – जलअणलादिहि जो पुग्गलो परमाणू णासं ण यादि सो अखंडो उच्चदे णाणाणू खंडाणि होंति ।

अर्थ – जल, अग्नि आदि से जो पुद्गल परमाणु नाश को प्राप्त नहीं होता है, वह पुद्गल परमाणु अखंड अर्थात् अभेदरूप कहलाता है । अनेक अणु खंड रूप होते हैं ।

धम्माधम्मागासा पत्तेयमखंडसण्णिदा णेया ।
कालाणेगमखंडो णाणा कालाणु खंडाणि ।।51।।

अन्वय – धम्माधम्मागासा पत्तेयं अखंडसण्णिदा णेया कालाणेगमखंडो णाणा कालाणु खंडाणि ।

50. (1) खंधाणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ – धर्म, अधर्म, आकाश प्रत्येक की अखंड संज्ञा जानना चाहिये। एक कालाणु अखंड और अनेक कालाणु खंड अर्थात् भेद रूप हैं।

सत्थेण सुतिक्खेण ण छेत्तुं जो सक्कदे अखण्डो सो।
तव्विवरीया खण्डा जीवा खलु पुग्गला य सक्किरिया ॥52॥
सेसचऊ णिक्किरिया जस्स य लोयम्हि गमणसत्ती हु।
सो सक्किरियो भणियो तव्विवरीयो दु णिक्किरियो ॥53॥

अन्वय – सुतिक्खेण सत्थेण जो छेत्तुं ण सक्कदे सो अखण्डो तव्विवरीया खण्डा। खलु जीवा पुग्गला य सक्किरिया सेसचऊ णिक्किरिया जस्स लोयम्हि गमणसत्ती सो सक्किरियो भणियो दु तव्विवरीयो णिक्किरियों ।

अर्थ – सुतीक्ष्ण शस्त्र के द्वारा जो छेदा नहीं जा सकता है, वह अखण्ड अर्थात् अभेद रूप और उससे विपरीत अर्थात् शस्त्रादि के द्वारा जो छेदा जा सकता है वह खंड अर्थात् भेद रूप है। निश्चय से जीव और पुद्गल सक्रिय हैं। शेष चार निष्क्रिय हैं जिसकी लोक में गमन करने की शक्ति है उसे सक्रिय कहा गया है और गमन शक्ति से रहित निष्क्रिय कहलाता है।

जीवादि पंच दव्वा बहुप्पदेसा हवंति णियमेण।
कालस्सेगपदेसो तम्हा तस्स य अकायत्तं ॥54॥

अन्वय – णियमेण जीवादि पंच दव्वा बहुप्पदेसा हवंति कालस्सेगपदेसो तम्हा तस्स य अकायत्तं।

अर्थ – नियम से जीवादि पाँच द्रव्य बहुप्रदेशी हैं। काल द्रव्य एक प्रदेशी है, इसलिए उसके अकायत्व अर्थात् बहुप्रदेशीपना नहीं पाया जाता है।

अणुरेगपदेसत्थो वि य बहुखण्डाण ठाणदादुं च।
सक्कदि उवयारा सो बहुप्पदेसी य कायो य ॥55॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वय – अणुरेगपदेसत्थो वि य बहुखण्डाण ठाण दादुं च सक्कदि उवयारा सो बहुप्पदेसी य कायो य।

अर्थ – अणु एक प्रदेशी होने पर भी बहुत से खण्डों (स्कन्धों) को स्थान देने में समर्थ होता है, इसलिये वह उपचार से बहुप्रदेशी और कायवान् है।

जं खेत्तं परमाणूओट्ठध्दं तं पदेसमिदि भणिदं।
सो चिय सव्वाणूणं ठाणं दादुं च सक्कदे णियमा ॥56॥

अन्वय – जं खेत्तं परमाणूओट्ठ ध्दं तं पदेसमिदि भणिदं णियमा सो चिय सव्वाणूणं ठाणं दादुं च सक्कदे ।

अर्थ – जो क्षेत्र परमाणु से घिरा है अर्थात् परमाणु आकाश के जितने क्षेत्र को घेरता है उसको प्रदेश कहा जाता है और नियम से वह प्रदेश समस्त परमाुणओं को स्थान देने में समर्थ होता है।

जो पंचासवजुत्तो सो कुणदि सुहासुहाणि कम्माणि।
तक्कयसुहदुक्खं पुण पभुंजदे बहुबिहं णियमा ॥57॥

अन्वय – जो पंचासवजुत्तो सो सुहासुहाणि कम्माणि कुणदि पुण तक्कय णियमा बहुविहं सुहदुक्खं पभुंजदे।

अर्थ – जो जीव पाँच आस्रवों से युक्त होता है, वह शुभ-अशुभ कर्मो को करता है और उन शुभ-अशुभ कर्मों के फल स्वरूप नियम से बहुत प्रकार के सुख-दुःख को भोगता है।

जो अव्वत्तं खाइय–उदयुवसममिस्सभावसंजुत्ता।
तह सयलं .... ॥58॥

नोट – गाथा अपूर्ण ही उपलब्ध है।

वीदावरणवियारवियप्पो णियपरमपारिणामियभावे।
जो वट्टदि परमसुही सो चेव सहावजीवो दु ॥59॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वय – वीदावरणवियारवियप्पो णियपरमपारि''''मियभावे जो वट्टदि सो परमसुही सहावजीवो चेव दु ।

अर्थ – जिसके समस्त आवरण विचार और विकल्प समाप्त हो गये हैं। निज परम पारिणामिक भाव में जो वर्तन करता है। वह परमसुखी और स्वभाव में स्थित जीव है।

लध्दूणादसुहासुहपरिणामणिमित्तमप्पणो देसे ।
चउबंदसरूवेण य परिणमदि हु पुग्गलो जो सो ॥60॥

अन्वय – जो लध्दूणादसुहासुहपरिणामणिमित्तमप्पणो देसे य चउबंदसरूवेण परिणमदि सो हु पुग्गलो ।

अर्थ – जो आत्मा के शुभाशुभ परिणामों के निमित्त से आत्म प्रदेशों में चार प्रकार के बंध स्वरूप से परिणमन करता है ,वह पुद्गल द्रव्य है।

होदि विजादि विभावो पुग्गलदव्वं हि[1] पुग्गलं किंचि ।
वण्णंतर गंधंतर रसंतरं गमिय खण्डरूवेण ॥61॥
परिणमदि पुग्गलो हु सजादिविहा ण त्ति वण्णिदं समये ।
जो सुद्धो परमाणू दुति अणु आदिं ण गच्छेदि ॥62॥

अन्वय – पुग्गलदव्वं विभावो परिणमदि हि किंचि पुग्गलं वण्णंतर गंधंतर रसंतरं खण्डरूवेण गमिय सजादिविहा परिणमदि हु पुग्गलो विजादि ण होदि त्ति समये वण्णिदं जो सुद्धो परमाणू दुति अणु आदिं ण गच्छेदि।

अर्थ – पुद्गल द्रव्य विभाव रूप परिणमता है, निश्चय से कुछ पुद्गल वर्ण से वर्णान्तर, गंध से गंधान्तर, रस से रसान्तर क्रम से होकर सजाति रूप परिणमते हैं। पुद्गल विजाति रूप परिणमन नहीं करते ऐसा आगम में कहा है । जो शुद्ध परमाणु है वह दो, तीन अणु आदि को प्राप्त नहीं होता है।

---

61. (1) दव्वम्हि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो पुग्गलो सजादि सहाओ जीवस्स पुग्गलो हु विजादि[1] ।
तह पुग्गलस्य जीवो धम्मचऊ होंति हु सहावा ।।63।।

अन्वय – सो पुग्गलो सजादि सहाओ जीवस्स पुग्गलो हु विजादि तह पुग्गलस्य जीवो धम्मचऊ हु सहावा होंति ।

अर्थ – वह पुद्गल सजाति स्वभाव वाला है। जीव का पुद्गल विजाति है तथा पुद्गल का जीव विजाति है। धर्मादि चार अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल स्वभाव रूप ही परिणमन करते हैं।

जो णियरूवं चत्ता पररूवे वट्टदे विहाओ सो ।
जो पररूवं मुच्चा णियरूवे वट्टदे सहाओ सो ।।64।।

अन्वय – जो णियरूवं चत्ता पररूवे वट्टदे सो विहाओ जो पररूवं मुच्चा णियरूवे वट्टदे सो सहाओ ।

अर्थ – जो अपने स्परूप को छोड़कर पररूप से वर्तन करता है, वह विभाव है। जो पर रूप को छोड़कर निज स्वरूप में वर्तन करता है वह स्वभाव है।

जो को वि सजोगिजिणो अघादिहणणत्थमेव णियमेण ।
दण्डकवाडं पदरं लोगं सह पूरणं कुणई ।।65।।
सो चेव लोगपूरणकरणे खलु वावगोऽहवा णेयो ।
णाणा सुहमेइंदिय जीवाणि पडुच्च वावगो चेव ।।66।।

अन्वय – जो को वि सजोगिजिणो णियमेण अघादिहणणत्थमेव दण्डकवाडं पदरं सह लोगं पूरणं कुणई सो लोगपूरणकरणे खलु वावगो अहवा णाणा सुहमेइंदिय जीवाणि पडुच्च वावगो चेव णेयो ।

अर्थ – जो कोई सयोगी केवली नियम से अघातियाकर्मों को नष्ट करने के लिए दण्ड, कवाट, प्रतर के साथ लोकपूरण समुद्धात करते हैं। वे ही लोक पूरण समुद्धात में निश्चय से सम्पूर्ण लोक में व्याप्त होते

---

63. (1) वीजादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं अथवा अनेक सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से सम्पूर्ण लोक में व्यापकता है ,ऐसा जानना चाहिये ।

वादर वण्णप्फदियो णिरयादि गदीसु जाद तसजीवा ।
अव्वावगा हु सव्वे पुग्गलदव्वो तहा दुविहो ।।67।।

अन्वय – वादर वण्णप्फदियो णिरयादि गदीसु जाद तसजीवा हु सव्वे अव्वावगा तहा पुग्गलदव्वो दुविहो ।

अर्थ – बादर वनस्पतिकायिक जीव तथा नरकादि गतियों को लेकर जितने त्रस जीव हैं वे सभी निश्चय से अव्यापक हैं - अर्थात् सम्पूर्ण लोक में व्याप्त नहीं हैं तथा पुद्गल द्रव्य दोनों प्रकार का अर्थात् व्यापक और अव्यापक रूप है ।

जम्हा दु लोगपूरणकरणे खलु होई कम्मणक्खंडो ।
सो पुग्गलो हु लोगे संपुण्णो वावगो तत्तो ।।68।।

अन्वय – जम्हा दु लोगपूरणकरणे कम्मणक्खंडो होई सो पुग्गलो लोगे संपुण्णो तत्तो वावगो ।

अर्थ – जो लोक पूरण समुद्घात में कर्मों के खंड होते हैं । वे पुद्गल लोक में पूरित हो जाते हैं , इसलिए पुद्गल को व्यापक जानना चाहिये ।

अहवा परमाणूहिं अणंताणंतेहि संचिदो लोगो ।
तम्हा णाणापरमाणूणं पडिवावगो होई ।।69।।

अन्वय – अहवा अणंताणंतेहि परमाणूहिं संचिदो लोगो तम्हा णाणापरमाणूणं पडिवावगो होई ।

अर्थ – अथवा अनंतानंत परमाणुओं के संचय से लोक बना है, इसलिए नाना परमाणुओं के प्रति व्यापक होता है ।

अव्वावगो हु एगो अविभागी होइ सुहुमपरमाणू ।
अव्वत्तस्सत्तीदो केवलणाणव्व भव्वस्स ।।70।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वय – एगो अविभागी सुहुमपरमाणू अव्वावगो होई अव्वत्तस्सत्तीदो केवलणाणव्व भव्वस्य ।

अर्थ – एक अविभागी सूक्ष्म परमाणु अव्यापक होता है। अव्यक्त शक्ति रूप भव्य जीव के केवलज्ञान के समान । **विशेष** - सूक्ष्म परमाणु अव्यापक है लेकिन यदि वह अपनी योग्यता से महास्कंध रूप परिणमन करें तो सम्पूर्ण लोकमें व्याप्त हो सकता है। परमाणु यह शक्ति अव्यक्त है। ठीक इसी प्रकार भव्य जीव में केवलज्ञान को प्राप्त करने की योग्यता हैं लेकिन वर्तमान में अव्यक्त है।

सव्वाओ पुढवीओ सव्वे खलु पव्वदादयो खंदा।
अव्वावगा हवंति हु धम्मतियं वावगा चेव ॥71॥

अन्वय – खलु सव्वाओ पुढवीओ सव्वे पव्वदादयो खंदा अव्वावगा हवंति हु धम्मतियं वावगा चेव ।

अर्थ – निश्चय से सभी पृथ्वीकायिक जीव और सभी पर्वतादि स्कंध अव्यापक होते हैं। धर्म, अधर्म और आकाश व्यापक हैं।

एगेगम्मि लोयपदेसे एगेग होइ कालाणू।
तम्हा णाणा कालाणूणं पडिवावगो णेयो ॥72॥

अन्वय – एगेगम्मि लोयपदेसे एगेग कालाणू होइ तम्हा णाणा कालाणूणं पडिवावगो णेयो ।

अर्थ – एक-एक लोक के प्रदेश पर, एक-एक कालाणु होता है। इसलिये अनेक-कालाणुओं की अपेक्षा (काल द्रव्य) व्यापक जानना चाहिये ।

अव्वावगो हु एगो कालाणू जो तिलोयसंपुण्णो।
सो वावगो हि अव्वावगो दु ण तिलोयसंपुण्णो ॥73॥

अन्वय – एगो कालाणू हु अव्वावगो जो तिलोयसंपुण्णो सो वावगो हि ण तिलोयसंपुण्णो अव्वावगो दु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ – एक कालाणु निश्चय से अव्यापक है। जो तीनों लोक में पूरित है, वह व्यापक है और निश्चय से जो तीन लोक में पूरित नहीं है वह अव्यापक हैं।

अत्थित्तं वत्थुत्तं दव्वपदेसित्तमगुरुलहुगत्तं।
णिच्चत्तपमेयत्तं [1]परिपरिणामित्तमिदि दवियाणं ॥74॥
छण्हं सामण्णगुणा एदे जीवस्स चेयणत्तं च।
सक्किरियत्तममुत्तत्तं तिण्णिगुणा विसेसा हु ॥75॥

अन्वय – अत्थित्तं वत्थुतं दव्वपदेसित्तं अगुरुलहुगत्तं णिच्चत्तपमेयत्तं परपरिणामित्तमिदि एदे दवियाणं छण्हं सामण्णगुणा जीवस्य चेयणत्तं सक्किरियत्तममुत्तत्तं हु विसेसा तिण्णिगुणा।

अर्थ – अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यप्रदेशत्व, अगुरुलघुत्व, नित्य प्रमेयत्व, परिणामिकत्व अर्थात् द्रव्यत्व ये, द्रव्यों के छह सामान्य गुण हैं। जीव के चेतनत्व, सक्रियत्व और अमूर्तत्व निश्चय से तीन विशेष गुण हैं।

पुग्गलदव्वस्स पुणो मुत्तत्तमचेयणत्तमक्किरियत्तं।
इदि तिण्णि विसेसगुणा अचेयणत्तं अमुत्तत्तं ॥76॥
णिक्किरियत्तं गदिहेदुत्तं इदि चउ गुणा विसेसा हु।
धम्मस्स अधम्मस्स य अचेयणत्तं अमुत्तत्तं ॥77॥
णिक्किरियत्तं ठिदिहेदुत्तं इदि चउगुणा विसेसा हु।
आयासं दव्वस्स य अचेयणत्तं अमुत्तत्तं ॥78॥
णिक्किरियत्तं ओगाहणत्तमिदि चउगुणा विसेसा हु।
कालस्य विसेसगुणा अचेयणत्तममुत्तत्तं ॥79॥
णिक्किरियत्तं च पुणो तह वट्टणलक्खणत्तमिदि चउरो।
एवं छण्हं दव्वाणं पि य कहिया विसेसगुणा ॥80॥
(कुलकम्)

अन्वय – पुग्गलदव्वस्य मुत्तत्तमचेयणत्तमक्किरियत्तं इदि

---

74. (1) परपरिणामित्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णि विसेसगुणा अचेयणत्तं अमुत्तत्तं णिक्किरियत्तं गरिहेदुत्तं इदि चउ विसेसा गुणा धम्मस्स य अधम्मस्स अचेयणत्तं अमुत्तत्तं णिक्किरियत्तं ठिदिहेदुत्तं इदि चउगुणा विसेसा य आयासं दव्वस्स अचेयणत्तं अमुत्तत्तं णिक्किरियत्त ओगाहणत्तमिदि हु चउगुणा विसेसा कालस्स विसेस गुणा अचेयणत्तममुत्तत्तंणिक्किरियत्तं च पुणो वट्टणलक्खणत्तमिदि चउरो। एवं छण्हं दव्वाणं पिय विसेसगुणा कहिया।

अर्थ – पुद्गल द्रव्य के मूर्त्तत्व , अचेतनत्व, सक्रियत्व ये तीन विशेष गुण जानना चाहिये। अचेतनत्व अमूर्तत्व , निष्क्रियत्व, गति हेतुता, ये चार विशेष गुण धर्म द्रव्य के हैं और अधर्म द्रव्य के अचेतनत्व, अमूर्तत्व,निष्क्रियत्व और स्थिति हेतुत्व ये चार गुण विशेष हैं। आकाश द्रव्य के अचेतनत्व, अमूर्तत्व , निष्क्रियत्व अवगाहनत्व ये निश्चय से चार विशेष गुण होते हैं। काल द्रव्य के विशेष गुण अचेतनत्व, अमूर्तत्व , निष्क्रियत्व और वर्तना लक्षण ये चार विशेष गुण हैं। इस प्रकार छह द्रव्यों के विशेष गुण कहे गये हैं।

जस्ससससव्वेयणणाणजणिय च इदण्ण अमियरससादी।
तित्तस्स अंतराधस्सयहेया सयल परदव्वा॥81॥

नोट – इस श्लोक का अर्थ स्पष्ट भासित नहीं है।

सयलविभावविरहिदो समदाभावो हु अंतरप्पा जो।
णियपरमपारिणामियभावत्तसम्मत्तणाणचरियाणं ॥82॥
एयत्तं गंतूणादारादेयस्सरूवगो जादो।
सयमेव णिव्वियारो वियप्परहिदो चिदाणंदो ॥83॥

अन्वय – हु समदाभावो जो अतंरप्पा सयलविभावविरहिदो णियपरमपारिणामियभावत्तसम्मत्तणाणचरियाणं एयत्तं गंतूणादारादे-यस्सरूवगो सयमेव णिव्वियारो वियप्परहिदो चिदाणंदो जादो।

अर्थ – समता स्वभावी अतंरात्मा भव्य जीव, समस्त विभाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावों से रहित होता हुआ, अपने परम पारिणामिक ... से उत्पन्न सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की एकता को प्राप्त कर आत्म स्वरूप को प्राप्त होकर स्वयं ही निर्विकार, विकल्प रहित चिदानंद रूप अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

णाणाइ गुणेहि जुदो णियसुद्धप्पा हु तस्सुवादेयो।
जे अप्पणो हु भिण्णा ते हेया इयरुवादेया ॥84॥

अन्वय – णाणाइ गुणेहि जुदो णियसुद्धप्पा हु उवादेयो तस्स जे अप्पणो हु भिण्णा ते हेया इयरुवादेया।

अर्थ – ज्ञानादि गुणों से युक्त निज शुद्धात्मा निश्चय से उपादेय है उसमें जो आत्मा से भिन्न भाव हैं वे हेय हैं तथा जो अपृथक् भाव हैं वे उपादेय हैं।

एवं छण्हं दव्वाणं पि सरूवं समासदो भणिदं।
वित्थरदो परमागमसत्थे जाणंतु सविसेसं ॥85॥

अन्वय – एवं छण्हं दव्वाणं पि सरूवं समासदो भणिदं वित्थरदो परमागमसत्थे सविसेसं जाणंतु ।

अर्थ – इस प्रकार छह द्रव्यों के स्वरूप को संक्षेप से कहा। विस्तार से तथा विशेष रूप परमागम शास्त्र से जानों।

इति षड्द्रव्यस्वरूपनिरूपणम् ॥

आदा तिविहो देहिसु बहिरंतरपरम चेदि तेसु खलु।
चित्ता बहिरप्पाणं मज्झा वा यादुवासये परमं ॥86॥

अन्वय – तेसु देहिसु आदा तिविहो बहिरंतरपरम चेदि चित्ता बहिरप्पाणं मज्झा उवासये परमं।

अर्थ – उन संसारी जीवों में आत्मा तीन प्रकार की बहिरात्मा, अतंरात्मा और परमात्मा। बहिरात्मा अवस्था को छोड़कर, मध्यमात्मा होकर परमात्मा की उपासना करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहिरप्पादेहादिसु जादा दम्भंतिरंतरप्पा हु।
मवयणसरीरप्पसु विम्भंतो णिम्मलो हु परमप्पा ॥87॥

अन्वय – बहिरप्पादेहादिसु दम्भंति जादा अंतरप्पा हु मणवयण-सरीरप्पसु विम्भंतो परमप्पा हु णिम्मलो ।

अर्थ – बहिरात्मा को देहादि में अहंकार हो जाता है , अंतरात्मा निश्चय से मन, वचन, और शरीर में भ्रम रहित रहता है और परमात्मा - द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित हैं ।

बंधजुदो बहिरप्पा णिरयादिगदीसु दुक्खमणुहवदि ।
अंतविरहियं बहुसो जणणं मरणं च लद्धूण ॥88॥

अन्वय – बहिरप्पा बंधजुदो अंतविरहियं बहुसो जणणं मरणं च लद्धूण णिरयादिगदीसु दुक्खमणुहवदि ।

अर्थ – बहिरात्मा जीव बंधसहित होकर अंतरहित बहुत से जन्म-मरण प्राप्त कर नरकादि गतियों में दुःखों का अनुभव करता है ।

जो अंतरप्पजीवो मणुजिंदसुरिंदलोयदिव्वसुहं ।
अणुभूय पुण मुणिंदो होऊण य हणइ जम्माणि ॥89॥
सो परमप्पो होदि हु अणंतणाणाइगुणगणेहि जुदो ।
भुंजेदि अणंतसुहं अदिंदियं अप्पसंभूदं ॥90॥

अन्वय – जो अंतरप्पजीवो मणुजिंदसुरिंदलोय दिव्वसुहं अणुभूय पुण मुणिंदो होऊण य जम्माणि हणइ सो हु अणंतणाणाइगुणगणेहि जुदो परमप्पो होदि अप्पसंभूदं अदिंदियं अणंतसुहं भुंजेदि ।

अर्थ – जो अंतरात्मा जीव है , वह चक्रवर्ती, इन्द्र आदि के तथा लोक के दिव्य सुखों का अनुभव करता हुआ पुनः मुनीन्द्र होकर जन्मों का नाश करता है और वह निश्चय से अनंत ज्ञानादि गुणों के समूह से युक्त होता हुआ परमात्मा होता है तथा आत्मा से उत्पन्न अतीन्द्रिय और अनंतसुख को भोगंता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्तं च गाथाद्वयं श्लोकद्वयं च –

7. ✳ अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥

अर्थ – जो आठ प्रकार के कर्मों से रहित हैं, अत्यन्त शान्तिमय हैं, निरञ्जन हैं, नित्य हैं, आठ गुणों से युक्त हैं, कृतकृत्य हैं और लोक के अग्रभाग में निवास करते हैं, वे सिद्ध भगवान हैं।

(गो. जी. 68)

8. ✳ सदसिवसंखो मक्कडि बुद्धो णइयोइयो य वइसेसी।
ईसरमंडलिदंसण विदूसणट्ठं कयं एदं ॥

अर्थ – सदाशिव, सांख्य, मस्करी, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, ईश्वर, मंडलि इन दर्शनों अर्थात् मतों को दूषण देने के लिए ये (सिद्धों के) विशेषण कहे गये हैं।

(गो. जी. 69)

9. ✳ सदाशिवः सदाकर्मा सांख्यो मुक्तं सुखोऽज्झितम्।
मस्करि किल मुक्तानां मन्यते पुनरागतम् ॥

10. ✳ क्षणिकं निर्गुणं चैव बुद्धो यौगश्च मन्यते।
कृतकृत्यन्तमीशानो मंडली चोर्द्धवर्त्तिनम् ॥

अर्थ –सदाशिव मतवादी ईश्वर को सदा कर्म से रहित मानता है। सांख्य मुक्त जीव को सुख से रहित मानता है। मस्करी मुक्तों का पुनः संसार में आगमन मानता है। बौद्ध क्षणिक और योग मुक्तात्मा को निर्गुण मानते हैं। ईश्वर वादी ईश्वर को कृतकृत्य नहीं मानते और मण्डली मत आत्मा को सदा ऊर्ध्वगामी मानता है।

इति द्रव्यचूलिका

पणमिय सुयमुणिणमियं विभिण्णकम्माचलं महावीरं।
सुविदिदपदत्थणिवहं वोच्छेयं तच्चरूवमणुकमसो ॥91॥

अन्वय – विभिण्णकम्माचलं सुविदिदपदत्थणिवहं महावीरं पणमिय सुयमुणिणमियं तच्चरूवमणुकमसो वोच्छेयं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ – कर्म रूपी पर्वतों को भेदन करने वाले तथा पदार्थों के समूह को अच्छी तरह जानने वाले ऐसे महावीर भगवान को प्रणाम करके मैं श्रुतमुनि क्रम से तत्त्वों के स्वरूप का निरूपण करनेवाले इस शास्त्र को कहूँगा।

जीवाजीवा आसवबंधणसंवरणणिज्जरा मोक्खा।
तच्चं जं वत्थूणं होइ सरूवं तु तं तच्चं ॥92॥

अन्वय – जीवाजीवा आसवबंधणसंवरणणिज्जरा मोक्खा तच्चं जं वत्थूणं सरूवं तु तं तच्चं होई।

अर्थ –जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व हैं। जो वस्तु का स्वरूप है वही तत्त्व है।

पणसंखिंदियपाणा मणबलवयणबलकायबलमेव।
तिण्णेव बलप्पाणा आउगमुस्सासपाणो दि ॥93॥

अन्वय – पणसंखिंदियपाणा मणबलवयणबलकायबलमेव तिण्णेव बलप्पाणा आउगमुस्सासपाणो दि।

अर्थ – पाँच इन्द्रिय प्राण, मनबल , वचन बल और काय बल तीन ही बल प्राण, आयु और श्वासोच्छ्वास प्राण इस प्रकार दस प्राण है।

दसपाणेहि अतीदे दव्वेहिं जीविदो हु भावीये।
जीविस्सदि ववहारो जीवदि सो वट्टमाणये जीवो ॥94॥

अन्वय – ववहारो दव्वेहिं दसपाणेहि अतीदे जीविदो भावीये जीविस्सदि वट्टमाणये जीवदि सो जीवो।

अर्थ – व्यवहार नय की अपेक्षा से जो द्रव्य रूप दस प्राणों के द्वारा अतीतकाल में जीता था और भविष्य में उन्हीं दस प्राणों से जीयेगा, वर्तमान काल में जी रहा है वह जीव कहलाता है।

तह णिच्चयदो चेयण णाणासुहादिहि भावपाणेहिं।
तिक्काले जो जीवदि जीविस्सदि जीविदो हु सो जीवो ॥95॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वय – तह णिच्चयदो चेयण णाणासुहादिहि भावपाणेहिं तिक्काले जो जीवदि जीविस्सदि जीविदो हु सो जीवो ।

अर्थ – तथा निश्चय से चेतना, ज्ञान, सुखादिक भाव प्राणों के द्वारा तीन काल में जो जीता था, जी रहा है तथा भविष्य काल में जीवेगा निश्चय से उसे जीव जानो ।

उवसमभावो खइयो भावो खायोवसमियभावो दु ।
जीवस्स स [1]तच्चोदयियो भावो पारिणामियो भावो ॥96॥

अन्वय – जीवस्स उवसमभावो खइयो खायोवसमियभावो ओदयियो भावो परिणामियो भावो तच्च ।

अर्थ – औपशमिक भाव, क्षायिक भाव , क्षायोपशमिक भाव, औदयिक भाव और पारिणामिक ये पाँच भाव जीव के स्वतत्त्व हैं ।

एतेसिं भेदा खलु दुग णव अट्ठारसं च इगिवीसं ।
तिण्णेव होंति कम्मुवसमम्हि जायदि हु उवसमो भावो ॥97॥

अन्वय – खलु एतेसिं दुग णव अट्ठारसं च इगिवीसं तिण्णेव भेदा कम्मुवसमम्हि उवसमो भावो जायदि ।

अर्थ – निश्चय से इन पाँच भावों के क्रमशः दो , नौ, अठारह, इक्कीस और तीन भेद होते हैं। कर्मों के उपशम से उपशम भाव होता है।

कम्मक्खयेण खइयो भावो भावोवसमियभावो दु ।
[2]उदयगदचेदणगुणो कम्मभवो होदि कम्मगुणो ॥98॥
सो [3]ओदइओ भावो कारणणिरवेक्खजो सहाओ दु ।
सो चेव पारिणामियभावो होदि त्ति णायव्वो ॥99॥

अन्वय – कम्मक्खयेण खइयोभावो भावोवसमियभावो दु उदयगदचेदणगुणो कम्मभवो कम्मगुणो सो ओदइओ भावो होदि कारणणिरवेक्खजो हु सहाआ सो चेव पारिणामियभावो होदि त्ति णायव्वो।

---

96. (1) सतच्चो 98. (2) उदयगुण
99. (3) औदयियो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ – कर्मों के क्षय से क्षायिक भाव होता है। कर्मों के उपशम से औपशमिक भाव होता है। कर्मों के उदय के साथ चेतन गुणों का प्रकट होना क्षायोपशमिक भाव है जो कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले कर्म के गुण(भाव) औदयिक भाव कहलाते हैं अर्थात् कर्मों के उदय से उत्पन्न होने वाले कर्म भाव औदयिक हैं। जो कर्मों के उपशम, क्षय, क्षयोपशम इत्यादि की अपेक्षा के बिना स्वभाव रूप भाव होता है उसे पारिणामिक भाव जानना चाहिये।

उवसमभावो उवसमसम्मं खलु होइ उवसमं चरियं ।
केवलणाणं दंसण तह खइयासम्मचरियदाणादी ॥100॥
खाइयभावस्सेदे भेदा अह मिस्सभावभेदा हु ।
चउ णाणं तिय दंसणंमण्णाणतियं च वेदगं सम्मं ॥101॥
देसजमं च सरागं चारित्तं होंति पंच दाणादि ।
ओदयियभावभेदा गदिलिंगकसाय–लेस्स–मिच्छत्तं ॥102॥
अण्णाणं च असिद्धं असंजमं चेदि होंति परिणामा ।
जीवत्तं भव्वत्तमभव्वत्तं चेदि णादव्वा ॥103॥

अन्वय – खलु उवसमभावो उवसमसम्मं उवसमं चरियं केवलणाणं दंसण तह खइयासम्मचरियदाणादी। खाइयभावस्सेदे भेदा अह मिस्सभावभेदा चउणाणं तिय दंसणंमण्णाणतियं च वेदगं सम्मं देसजमं सरागं चारित्तं पंच दाणादि च होंति ओदयियभावभेदा गदिलिंगकसाय-लेस्स-मिच्छत्तं अण्णाणं असिद्धं असंजमं च होंति परिणामा जीवत्तं भव्वत्तमभव्वत्तं चेदि णादव्वा।

अर्थ – निश्चय से औपशमिक भाव औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र के भेद से दो प्रकार का है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, और वीर्य इस प्रकार कुल नौ क्षायिक भाव के ये भेद और मिश्र अर्थात् क्षायोपशमिक भाव के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान ये चार ज्ञान , तीन दर्शन अर्थात् चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवधिदर्शन , तीन अज्ञान अर्थात् कुमति, कुश्रुत और कुवधिज्ञान, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, देश संयम, सराग चारित्र, पाँच लब्धियाँ-दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य इस प्रकार ये समस्त क्षापोपशमिक भाव के भेद होते हैं। औदयिक भाव के गति, लिंग, कषाय, लेश्या, मिथ्यात्व, अज्ञान, असिद्धत्व और असंयम ये भेद होते हैं। पारिणामिक भाव के जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन भेद जानना चाहिये।

उवओगो लक्खणमिह सो दुविहो णाणदंसणं चेइ।
णाणं अट्ठ वियप्पो चदुव्विहो दंसणुवजोगो ॥104॥

अन्वय – उवओगो लक्खणमिह सो दुविहो णाणदंसणं चेइ णाणं अट्ठ वियप्पो चदुव्विहो दंसणुवजोगो।

अर्थ – उपयोग जीव का लक्षण है , वह दो प्रकार है ज्ञान और दर्शन रूप अर्थात् ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग रूप। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है और दर्शनोपयोग चार प्रकार का है।

संसारी मुत्ता इदि ते दुवियप्पा हवंति खलु जीवा।
संसारी हु समुत्ता मुत्तिविरहिदा हु ते सिद्धा ॥105॥

अन्वय – ते जीवा खलु दुवियप्पा संसारी मुत्ता हवंति संसारी हु समुत्ता मुत्तिविरहिदा हु ते सिद्धा।

अर्थ – वे जीव निश्चय से दो प्रकार के है संसारी और मुक्त संसारी जीव निश्चय से मूर्तिक तथा जो अमूर्तिक हैं वे सिद्ध जीव हैं।

संसारी तसथावरभेदा दुविधा हवंति तेसु तसा।
बि ति चदुरिंदिय वियला सण्णि असण्णी दु पंचक्खा ॥106॥

अन्वय – संसारी तसथावरभेदा दुविधा हवंति तेसु तसा बि ति चदुरिंदिय वियला सण्णि असण्णी दु पंचक्खा।

अर्थ - संसारी जीव त्रस स्थावर के भेद से दो प्रकार के होते हैं। उनमें द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय-विकलेन्द्रिय, असंज्ञीपंचेन्द्रिय और संज्ञीपंचेन्द्रिय ये सभी त्रस जीव हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एइंदियादि पंचक्खंताणं फुसणरसणघाणाणि ।
णयणसोदाणि कमसो वड्ढेओ हवंति जीवाणं ॥107॥

अन्वय – जीवाणं एइंदियादि पंचक्खंताणं फुसणरसणघाणाणि णयणसोदाणि कमसो वड्ढेओ हवंति ।

अर्थ – जीवों में एकेन्द्रिय को आदि लेकर पंचेन्द्रिय पर्यंत क्रमशः स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन इन्द्रियों की वृद्धि होती है ।

अठ फासा पंच रसा दो गंधा पंच वण्ण सत्त सरा ।
एदे मणेण सहिया इंदियविसया हु अठवीसा ॥108॥

अन्वय – अठ फासा पंच रसा दो गंधा पंच वण्ण सत्त सरा एदे मणेण सहिया इंदियविसया हु अठवीसा ।

अर्थ – आठ स्पर्श, पांच रस, दो गंध, पांच वर्ण, सात शब्द और मन ये अट्ठाईस इन्द्रियों के विषय हैं ।

सुद्धखरभूजलग्गिवायु णिगोददुग थूलसुहुमा य ।
पत्तेयपडिट्ठिदरा तणवल्लिगुम्मरुक्खमूला य ॥109॥
विगतिगचदुविगलिंदियजीवा पुण्णा अपुण्णदुगभेदा ।
सण्णि असण्णी जलथलखगाण गब्भे य संमुच्छे ॥110॥
पज्जत्ता णिव्वत्ति अपज्जत्ता चेदि गब्भजा दुविहा ।
पुण्णा य अपुण्णदुगा इदि तिय भेदा हवंति संमुच्छाइं ॥111॥
वरमज्झजहण्णाणं भोगजतिरियाणं थल–खगाणं च ।
गब्भभवे पज्जत्ता णिव्वत्ति अपुण्णगा दुविहा ॥112॥
अज्जसमुच्छिममणुवे लद्धी अपुण्णो हु गब्भजे मणुवे ।
भोगतियकुणरमणुवे मिलेच्छमणुवे य पुण्ण दुगं ॥113॥
भावण–वाण–ज्जोइसदस–अठ–पणभेयसंजुदा देवा ।
कप्पजतिसट्ठिपडलुब्भावा य उणपण्णपडलजा णिरया ॥114॥
पज्जत्ता णिव्वत्ति अपज्जत्ता चेदि दुविह भेदे दे ।
जीवसमासवियप्पा छाहियचारिसयमिदि भणिदं ॥115॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वय – सुद्धखरभूजलग्गिवायु णिगोददुग थूलसुहुमा पत्तेयपडिट्ठिदरा तणवल्लिगुम्मरुक्खमूला विगतिगचदुविगलिंदियजीवा पुण्णा अपुण्णदुगभेदा सण्णि असण्णी जलथलखगाण गब्भे य संमुच्छे पज्जत्ता णिव्वत्ति अपज्जत्ता चेदि गब्भजा दुविहा पुण्णा य अपुण्णदुगा इदि तिय भेदा हवंति संमुच्छाइं वरमज्झजहण्णाणं भोगजतिरियाणं थल-खगाणं च गब्भभवे पज्जत्ता णिव्वत्ति अपुण्णगा दुविहा अज्जसमुच्छिममणुवे लद्धी अपुण्णो हु गब्भजे मणुवे भोगतियकुणरमणुवे मिलेच्छमणुवे य पुण्ण दुगं भावण-वाण-ज्जोइसदस-अठ-पणभेयसंजुदा देवा कप्पजतिसट्ठि-पडलुब्भावा य उणपण्णपडलजा णिरया पज्जत्ता णिव्वत्ति अपज्जत्ता चेदि दुविह भेदे दे जीवसमासवियप्पा छाहियचारिसयमिदि भणिदं।

अर्थ – शुद्ध पृथिवीकायिक, खर पृथिवीकायिक , जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, नित्य निगोद और इतरनिगोद इन सातों के बादर और सूक्ष्म के भेद से चौदह भेद , तृण , बल्ली, गुल्म, वृक्ष और मूल इस तरह प्रत्येक वनस्पति के पाँचों भेदों के सप्रतिष्ठित , अप्रतिष्ठित के भेद से दस भेद। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय ये तीन विकलेन्द्रिय इस तरह एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्बन्धी 27=(14 + 10 +3) भेद होते हैं तथा ये सर्व पर्याप्त और दो प्रकार के अपर्याप्त (निवृत्त्यपर्याप्त-लब्धपर्याप्त) के भेद से (27 x 3)= 81 हैं। पंचेन्द्रिय में कर्म भूमिज तिर्यंच संज्ञी और असंज्ञी में जलचर, थलचर और नभचर के भेद से छह प्रकार के होते हैं। (इन छह में) गर्भज और सम्मूर्छन में , गर्भज के पर्याप्त और निर्वृत्त्यपर्याप्त इस प्रकार दो भेद होने से गर्भजों के 12=(6 x 2) भेद होते हैं। सम्मूर्छनों के पर्याप्त, निर्वृत्त्यपर्याप्त और लब्ध पर्याप्त ये तीन भेद होते हैं। इस प्रकार सम्मूर्छनों के 18=(6 x 3) भेद हैं। उत्कृष्ट, मध्यम व जघन्य भोगभूमि के जलचर व नभचर तिर्यंचों में पर्याप्त, निर्वृत्त्यपर्याप्त इन दो भेदों की अपेक्षा 12=(3 x 2 = 6, 6 x 2) भेद हैं। इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च संबंधी कुल 42 =(12 + 18 + 12) भेद होते हैं। आर्यखण्ड में सम्मच्र्छन मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त होते हैं (अतः सम्मूर्च्छन मनुष्यों का एक भेद) गर्भज मनुष्यों में तीन भोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिज मनुष्य (उत्तम, मध्यम, जघन्य) कुभोग भूमिज मनुष्य, म्लेच्छखंड मनुष्य इस प्रकार छह प्रकार के गर्भज मनुष्यों के पर्याप्त व निर्वृत्त्यपर्याप्त दो भेद होने से 12=(6 X 2) भेद हैं। दस प्रकार के भवनवासी देव, आठ प्रकार के व्यन्तर देव, पाँच प्रकार के ज्योतिषी देव , 63 पटलों में उत्पन्न होने वाले वैमानिक देव , 49 पटलों में उत्पन्न होने वाले नारकी। इस प्रकार सबको मिलाने पर (10 + 8 + 5 + 63 + 49) = 135 भेद हैं। ये सभी पर्याप्त और निर्वृत्त्यपर्याप्त इन दो भेदों की अपेक्षा (135 X 2=270) भेद रूप हैं। इस प्रकार जीव समास के एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रिय के 81, पंचेन्द्रिय तिर्यंच के 42, सम्मूर्च्छन मनुष्य का एक, गर्भज मनुष्य के 12, देव व नारकी के 270, ये सब मिलाकर (81 + 42 + 1 + 12 + 270)=406 भेद कहे गये हैं।

रिजु–पाणिमुत्त–लांगल–गोमुत्तगदि त्ति गदि चदुधा।
रिजुगदिये आहारी इयरतिये चेवणाहारी ॥116॥

अन्वय – रिजु-पाणिमुत्त-लांगल-गोमुत्तगदि त्ति गदि चदुधा रिजुगदिये आहारी इयरतिये चेवणाहारी।

अर्थ – ऋजु, पाणिमुक्ता, लांगलिका , गोमूत्रिका इसप्रकार विग्रह गति चार प्रकार की होती है । ऋजु गति में जीव आहारक होता है और अन्य तीन गतियों अर्थात् पाणिमुक्ता, लाङ्गलिका, गोमूत्रिका इन में अनाहारक ही है ।

तिण्हं ओरालादि तणूणं चउ पणग छक्क पज्जत्तीणं।
जोग्गं पोग्गलपिण्डग्गहणं आहारयं णाम ॥117॥

अन्वय – तिण्हं ओरालादि तणूणं चउ पणग छक्क पज्जत्तीणं जोग्गं पोग्गलपिण्डग्गहणं आहारयं णाम।

अर्थ – तीनों औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीरों तथा चार, पाँच और छह पर्याप्तिओं के योग्य पुद्गल पिण्ड का ग्रहण करना आहारक कहलाता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुच्छणजम्मं गब्भजम्ममुववादजम्ममिदि तिविहं ।
तज्जोणी सच्चित्तमचित्तं तम्मिस्सं सीदमुण्हं तु ॥118॥
तम्मिस्सं पुण संवुडविउलं तम्मिस्समिदि हु सामण्णे ।
णव जोणीओ होंति हु वित्थारे चदुरसीदिलक्खाणि ॥119॥

अन्वय – समुच्छणजम्मं गब्भजम्ममुववादजम्ममिदि तिविहं तज्जोणी सच्चित्तमचित्तं तम्मिस्सं तु सीदमुण्हं तम्मिस्सं पुण संवुडविउलं तम्मिस्समिदि सामण्णे णव जोणीओ होंति हु वित्थारे चदुरसीदिलक्खाणि।

अर्थ – सर्मूच्छन जन्म, गर्भ जन्म और उपपाद जन्म इस प्रकार जन्म तीन प्रकार का होता है । जन्म की योनियाँ सचित्त, अचित्त सचित्ताचित्त , शीत, उष्ण , मिश्र अर्थात् शीतोष्ण संवृत, विवृत और मिश्र अर्थात् संवृत विवृत इस प्रकार सामान्य से नव योनि होती हैं और विस्तार से 84 लाख योनियाँ जाननी चाहिये।

आहारसरीरक्खाणपाणभासामणाण पज्जत्ती ।
चारि पण छक्क णेया एयक्खे वियलसण्णिह्मि ॥120॥

अन्वय – आहारसरीरक्खाणपाणभासामणाण पज्जत्ती एयक्खे वियलसण्णिह्मि चारि पण छक्क णेया ।

अर्थ – आहार, शरीर , इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ये छह पर्याप्तियाँ हैं । एकेन्द्रिय जीव के चार पर्याप्तियाँ विकलेन्द्रिय जीव के पाँच पर्याप्तियाँ तथा संज्ञी पर्याप्तक जीव के छह पर्याप्तियाँ होती हैं ।

पारंभणं तु पज्जत्तीणं जुगवं कमेण पुण्णत्तं ।
अंतमुहुत्तह्मि कमो मिलिदे अंतोमुहुत्तं तु ॥121॥

अन्वय – पज्जत्तीणं पारंभणं तु जुगवं पुण्णत्तं कमेण अंतमुहुत्तह्मि कमो मिलिदे तु अंतोमुहुत्तं ।

अर्थ – पर्याप्तियों का प्रारंभ तो युगपत् होता है पूर्णता क्रम से एक-एक अन्तर्मुहूर्त में होती है और सभी पर्याप्तियों के काल को मिलाने पर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्तगणामुदये संपुण्णा होंति जस्स[1] स पज्जत्ती।
जाव दु तणू ण पुण्णो णिव्वत्ति अपुण्णगो ताव ॥122॥

अन्वय – जस्स पज्जत्तगणामुदये संपुण्णा होंति स पज्जत्ती जाव दु तणू ण पुण्णो णिव्वत्ति अपुण्णगो ताव।

अर्थ – जिसके पर्याप्ति नामकर्म के उदय से पर्याप्ति की पूर्णता होती है वह पर्याप्तक जीव कहलाता है। जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है, तब तक वह जीव निर्वृत्यपर्याप्तक है।

जस्स अपज्जत्तुदये णियणियपज्जत्ति पुण्णदा ण हवे।
सो लद्धि अपज्जत्तो मरदि हु अन्तोमुहुत्तम्हि ॥123॥

अन्वय – जस्स अपज्जत्तुदये णियणियपज्जत्ति पुण्णदा ण हवे सो लद्धि अपज्जत्तो हु अन्तोमुहुत्तम्हि मरदि।

अर्थ – जिस जीव के अपर्याप्तक नामकर्म के उदय से अपनी - अपनी पर्याप्ति की पूर्णता अर्थात् किसी भी पर्याप्ति की पूर्णता नहीं होती है। वह लब्ध्यपर्याप्तक जीव कहलाता है। वह जीव नियम से अन्तर्मुहूर्त में मरण को प्राप्त करता है।

ओरालिय–वेगुव्विय–आहारय–तेज–कम्मणा देहा।
पढम तिया संखगुणा पदेसदो तेजकम्मणाणंतगुणा ॥124॥

अन्वय – ओरालिय-वेगुव्विय-आहारय-तेज-कम्मणा देहा पदेसदो पढम तिया संखगुणा तेजकम्मणाणंतगुणा।

अर्थ – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पाँच प्रकार के शरीर होते हैं। प्रदेश की अपेक्षा प्रथम तीन शरीर असंख्यात गुणित रूप होते हैं, तैजस और कार्मण शरीर अनंत गुणे होते हैं।

तेयपरं परसुहुमा तेजदुगा होंति अप्पडीघादा।
सव्वेसिं जीवाणं अणाइ संबंधगा चेव ॥125॥

---

122. (1) स

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वय – तेयपरं परसुहुमा तेजदुगा होंति अप्पडीघादा सव्वेसिं जीवाणं अणाइ संबंधगा चेव ।

अर्थ – तैजस शरीर से आगे का शरीर अर्थात् कार्मण शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है। तैजस और कार्मण ये दोनों शरीर अप्रतिघाती होते है। इन दोनों शरीरों का सभी जीवों के साथ अनादि सम्बन्ध है ।

गब्भज संमुच्छणजं ओरालं होदि खलुववादभवं ।
वेगुव्वं छट्ठगुणे अव्वाघादि हु सुहविसुद्ध आहारो ॥126॥

अन्वय – खलु गब्भज संमुच्छणजं ओरालं होदि उववादभवं वेगुव्वं छट्ठगुणे सुहविसुद्ध अव्वाघादि आहारो ।

अर्थ – निश्चय से गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न हुआ शरीर औदारिक शरीर कहलाता है उपपाद जन्म से होने वाला देव और नारकियों का शरीर वैक्रियिक होता है। प्रमत्त संयत छठवें गुण स्थानवर्ती मुनिराज के जो शुभ, विशुद्ध और अव्याघात (बाधारहित) शरीर होता है वह आहारक शरीर कहलाता है ।

पल्लतितेत्तीसुवहि भिण्णमुहुत्तं तु उवहि छासट्ठी ।
सत्तरिकोडीकोडि उवहीयो वरठिदी ताणं ॥127॥

अन्वय – वरठिदी ताणं पल्लतितेत्तीसुवहि तु भिण्णमुहुत्तं उवहि छासट्ठी सत्तरिकोडीकोडि उवहीयो ।

अर्थ – उन शरीरों की उत्कृष्ट स्थिति अर्थात् औदारिक शरीर की तीन पल्य , वैक्रियिक शरीर की तेतीस सागर और आहारक शरीर की भिन्नर्मुहूर्त , तैजस शरीर की छियासठ सागर तथा कार्मण शरीर की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है ।

जं देहीपरिवरणं जालमिव हि मंससोणिदं विउदं ।
तं चेव जरायु हवे जरायुजातम्हि जादो हु ॥128॥

अन्वय – जं मंससोणिदं विउदं हि जालमिव देहीपरिवरणं तं चेव जरायु हवे जरायुजातम्हि जादो हु ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ – जो मांस और रुधिर से युक्त जार के समान जीव के शरीर का आवरण होता है उसे जरायु कहते है । जरायु में जो उत्पन्न होता है वह जरायुज कहलाता है।

जं सुकुलसोणिदाणं परिवरणं णहसरिच्छ कठिणत्तं ।
परिमण्डलं तमण्डं तम्हि भवो अण्डजो जीवो ।।129।।

अन्वय – जं सुकुलसोणिदाणं परिवरणं णहसरिच्छ कठिणत्तं परिमण्डलं तमण्डं तम्हि भवो जीवो अण्डजो ।

अर्थ – जो सफेद खून का आवरण नख के समान कठोर होता है तथा गोलाकार होता है वह अण्ड कहलाता है । जो जीव उसमें उत्पन्न होता है वह अण्डज कहलाता है ।

किंचि वि परिवरणविणा जोणीदो णिग्गदेण मेत्तेण ।
परिपुण्णावयओ सो परिफंदादिहि जुदो पोदो ।।130।।

अन्वय – किंचि वि परिवरणविणा परिपुण्णावयओ जोणीदो णिग्गदेण मेत्तेण परिफंदादिहि जुदो सो पोदो ।

अर्थ – जो जीव आवरण से रहित होते हैं, जिनके शरीर के अवयवपूर्ण विकसित होते हैं तथा योनि से निकलते ही जो चलने-फिरने लगते हैं, वे पोतज कहलाते हैं।

मणुवादिया हु जीवा जरायुजा वग्घपहुदयो पोदा ।
पक्खिप्पमुहा अण्डजजीवेदे मणुयतिरियगदिजादा ।।131।।

अन्वय – मणुयतिरियगदिजादा मणुवादिया हु जीवा जरायुजा वग्घपहुदयो पोदा पक्खिप्पमुहा अण्डजजीवेदे ।

अर्थ – मनुष्य, तिर्यंच गति में उत्पन्न होने वाले मनुष्यादि जीव जरायुज, बाघ आदि पोतज, पक्षी आदि अण्डज होते हैं।

गब्भं जरायुजाण्डजपोदाणं देवणिरयजादाणं ।
उववादं सेसाणं संमुच्छणजम्ममिदि णेयं ।।132।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वय – जरायुजाण्डजपोदाणं गब्भं देवणिरयजादाणं उववादं सेसाणं संमुच्छणजम्ममिदि णेयं ।

अर्थ – जरायुज, अण्डज और पोतज ये गर्भ जन्म के तीन भेद होते हैं। देवगति और नरकगति में उत्पन्न होने वाले जीवों का उपपाद जन्म होता है। गर्भ जन्म और उपपाद जन्म वाले जीवों को छोड़कर शेष जीवों का संमूर्च्छन जन्म जानना चाहिये।

णारयइगि–विगलिंदिय–संमुच्छण–पंचक्ख सव्व जीवा य।
संढा हु कम्मभूमिजणरतिरिया वेदतियजुत्ता ॥133॥

अन्वय – हु सव्व णारयइगि-विगलिंदिय-संमुच्छणपंचक्ख जीवा य संढा कम्मभूमिजणरतिरिया वेदतियजुत्ता।

अर्थ – निश्चय से सभी नारकी, एकेन्द्रिय जीव, विकलेन्द्रिय अर्थात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और समूर्च्छन पंचेन्द्रिय जीव नपुंसक होते हैं। कर्म भूमि में उत्पन्न मनुष्य और तिर्यंच, तीनों वेद वाले होते हैं।

देवा चउण्णिकाया वरमज्झजहण्णभोगभूजादा।
तिरिया णरा य कुणरा पुरिसित्थि वेदगा चेव ॥134॥

अन्वय – चउण्णिकाया देवा वरमज्झजहण्णभोगभूजादा तिरिया णरा य कुणरा पुरिसित्थि वेदगा चेव।

अर्थ – चारों निकायों के देव, उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमि में उत्पन्न तिर्यंच, मनुष्य और कुमानषों के पुरुष और स्त्री ये दो ही वेद पाये जाते हैं।

हिंसादिसु चाणुरदा सत्तव्वसणेहिं संजुदा णिच्चं।
बहुआरंभपरिग्गहसंचिदकम्मा हु जांति णिरयगदिं ॥135॥

अन्वय – हिंसादिसु चाणुरदा सत्तव्वसणेहिं संजुदा णिच्चं बहुआरंभपरिग्गहसंचिदकम्मा हु णिरयगदिं जांति ।

अर्थ – जो जीव हिंसादिक पाँच पापों में लीन और सात व्यसनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से युक्त हैं, नित्य बहुत आरम्भ और परिग्रह से संचित कर्मों के कारण वे नरकगति को जाते हैं।

सण्णा चउसंजुत्ता परधणहरणादिभावसहिदा हु।
मायावंचणसीला तिरियगदिं जांति ते जीवा ॥136॥

अन्वय – सण्णा चउसंजुत्ता हु परधणहरणादिभावसहिदा मायावंचणसीला ते जीवा तिरियगदिं जांति ।

अर्थ – जो चारों संज्ञाओं अर्थात् आहार, भय , मैथुन और परिग्रह से संयुक्त है तथा दूसरों के धनादि के हरण के भाव से सहित हैं। मायाचारी, कपट स्वभाव से युक्त हैं। वे जीव तिर्यंचगति को प्राप्त होते हैं।

णिच्चं दाणाणुरदा सील–जमविहीणमज्झिमगुणजुदा।
अल्पारंभपरिग्गहसंचिदकम्मा हु जांति मणुयगदिं ॥137॥

अन्वय – णिच्चं दाणाणुरदा सील-जमविहीणमज्झिमगुणजुदा हु अल्पारंभपरिग्गहसंचिदकम्मा मणुयगदिं जांति ।

अर्थ –नित्य दान में अनुरक्त, शील - नियम आदि से रहित, मध्यम गुणों से युक्त निश्चय ही अल्प आरम्भ और परिग्रह से संचित कर्मों के कारण मनुष्य गति को जाते हैं।

जे सद्दिट्ठी जीवा जे सावयणिलयसंजुदा जीवा।
जे सयलव्वदणिरदा ते जीवा जांति दिविजवरसोक्खं॥138॥

अन्वय – जे सद्दिट्ठी जीवा जे सावयणिलयसंजुदा जीवा जे सयलव्वदणिरदा ते जीवा दिविजवरसोक्खं जांति।

अर्थ –जो सम्यग्दृष्टि जीव श्रावक के सम्पूर्ण व्रतों से संयुक्त हैं वे जीव तथा जो सम्पूर्ण व्रतों में निरत अर्थात् महाव्रती वे जीव स्वर्गों के उत्कृष्ट सुखों को प्राप्त करते हैं।

जे चत्तोभयगंथा सुद्धप्परया हु णिज्जिदकसाया।
उग्गतवखविदकम्मा ते जीवा जांति सिद्धिगदिं॥139॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वय – जे चत्तोभयगंथा सुद्धप्परया णिज्जिदकसाया हु उग्गतवखविदकम्मा ते जीवा जांति सिद्धिगदिं ।

अर्थ –जिन जीवों ने भय और सम्पूर्ण परिग्रहों का परित्याग कर दिया है। शुद्धात्मा में रत हैं , कषायों को जीत लिया है तथा उग्रतप के बल से क्षय कर दिया है कर्मों का जिन्होनें, वे जीव सिद्धगति को प्राप्त करते हैं।

पावेण णरयतिरयं पुण्णेण य जांति देवगदिसोक्खं ।
मिस्सेण य मणुयगदिं दोहिं खयदो हु णिव्वाणं ।।140।।

अन्वय– पावेण णरयतिरयं पुण्णेण य देवगदिसोक्खं जांति मिस्सेण य मणुयगदिं दोहिं खयदो हु णिव्वाणं ।

अर्थ –पाप कर्मों से जीव नरक और तिर्यंच गति को तथा पुण्य के फलस्वरूप देवगति के सुखों को प्राप्त करता है। मिश्र अर्थात् पुण्य - पाप से मनुष्य गति और पुण्य और पाप इन दोनों के क्षय से निर्वाण प्राप्त करता है।

इति जीवतत्त्वम्।

तच्चमजीवं पंचवियप्पं धम्मो अधम्म आयासं ।
कालो चेदि अमुत्ता चउरेदे पोग्गलो मुत्तो ।।141।।

अन्वय – तच्चमजीवं पंचवियप्पं धम्मो अधम्म आयासं कालो चेदि अमुत्ता चउरेदे पोग्गलो मुत्तो ।

अर्थ – वह अजीव तत्त्व पाँच प्रकार का है, धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल। प्रारम्भ के चार अमूर्त तथा पुद्गल द्रव्य मूर्त है।

गदि ठाणोग्गहवत्तणकिरियुवयारो दु होदि धम्म चऊ।
फासरसगंधवण्णगुणेहि जुदो पुग्गलो दव्वो ।।142।।

अन्वय – धम्म चऊ गदि ठाणोग्गहवत्तणकिरियुवयारो दु फासरसगंधवण्णगुणेहि जुदो पुग्गलो दव्वो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ – धर्म, अधर्म , आकाश और काल द्रव्य के क्रमशः गति, स्थिति, अवगाहन, वर्तन क्रिया ये चारों उपकार हैं। पुद्गल द्रव्य स्पर्श, रस, गंध और वर्ण गुणों से युक्त होता है।

इति अजीवतत्त्वम्।

मिच्छाविरदिपमादा कसायजोगा य आसवा होंति।
पण वारस पण्णरसा पणवीसा पंचदस भेदा ॥143॥

अन्वय – मिच्छाविरदिपमादा कसायजोगा य आसवा होंति पण वारस पण्णरसा पणवीसा पंचदस भेदा।

अर्थ –मिथ्या दर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये आस्रव अर्थात् बंध के कारण हैं। इनके क्रमशः पाँच, बारह, पन्द्रह, पच्चीस और पन्द्रह भेद होते हैं।

उदये दंसणमोहे अतच्चसद्धाणपरिणदी मिच्छा।
एयंतं विवरीयं विणयं संसइदमण्णाणं ॥144॥

अन्वय – दंसणमोहे उदये अतच्चसद्धाणपरिणदी मिच्छा एयंतं विवरीयं विणयं संसइदमण्णाणं।

अर्थ – दर्शनमोहनीय कर्म के उदय में अतत्त्व श्रद्धान रूप परिणति मिथ्यात्व है। वह मिथ्यात्व एकांत, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञान इस प्रकार पाँच प्रकार का है।

एयंतं बुद्धमदे विवरीयं बम्हणे तहा विणयो।
तावसणिवहे संसयमिच्छे अण्णाण मक्कडिये॥ 145॥

अन्वय – बुद्धमते एयंतं बम्हणे विवरीयं तहा विणयो तावस संसयमिच्छे णिवहे अण्णाण मक्कडिये।

अर्थ – एकांत मिथ्यात्व में बुद्धमत, विपरीत मिथ्यात्व में ब्राह्मण विनय मिथ्यात्व में तापसी, संशय मिथ्यात्व में इन्द्र तथा अज्ञान मिथ्यात्व में मस्करी इसप्रकार पाँचों मिथ्यात्वों में पाँच मिथ्यादृष्टि मत प्रसिद्ध हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फासरसघाणणयणे सोदे चित्तिंदिये य अणिवित्ती ।
इदि छच्चेव विरमणं इंदियविसयाण णायव्वा ॥146॥

अन्वय – फासरसघाणणयणे सोदे चित्तिंदिये अणिवित्ती इदि छच्चेव विरमणं इंदियविसयाण णायव्वा ।

अर्थ – स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र इन इन्द्रियों और मन के विषयों से अनिर्वृति अर्थात् प्रवृत्ति करना इस प्रकार छह प्रकार की अविरति जानना चाहिये ।

पुढवी आऊ तेऊ वाउवणप्फदि तसेसु जीवेसु ।
छसु वि जदो णो विरई ते पाणि असंजमा होंति ॥147॥

अन्वय – पुढवी आऊ तेऊ वाउवणप्फदि तसेसु जीवेसु वि छसु जदो णो विरई ते पाणि असंजमा होंति ।

अर्थ –पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक वनस्पतिकायिक और त्रस इन छह प्रकार के जीवों की हिंसा से जो विरत नहीं है । वे प्राणी असंयमी होते हैं ।

थीभत्तरायजणवदकहा य कोहादिगा य चत्तारि ।
चत्तारिंदिय पणगं णेहो णिद्दा य एगेगं ॥148॥

अन्वय – थीभत्तरायजणवदकहा य चत्तारि कोहादिगा चत्तारि इंदिय पणगं णेहो णिद्दा य एगेगं ।

अर्थ –स्त्री-कथा, भोजन-कथा, अवनिपाल-कथा, राज-कथा इस प्रकार चार कथायें, क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषायें , पाँच इन्द्रियाँ, स्नेह और निद्रा । इस प्रकार प्रमाद के पन्द्रह भेद जानना चाहिये ।

सिलभेदथंभवेणुवमूलक्किमिरायकंवलसमाणा ।
अणकोहादी चउरो सव्वेदे णिरयगदिहेदु ॥149॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वय – सिलभेदथंभवेणुवमूलक्किमिरायकंवलसमाणाचउरो अणकोहादी सव्वेदे णिरयगदिहेदु ।

अर्थ –शिलाभेद, शैलभेद, बाँस की जड़, कृमिराग कम्बल के समान क्रमशः चारों अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ ये सभी कषाय नरकगति की कारण हैं ।

भूभेदट्ठि उरब्भयसिंगे चक्कमलसरिसगा होंति ।
चउरप्पच्चक्खाणा सव्वेदे तिरयगदिहेदु ॥150॥

अन्वय – भूभेदट्ठि उरब्भयसिंगे चक्कमलसरिसगा चउरप्पच्च-क्खाणा सव्वेदे तिरयगदिहेदु होंति ।

अर्थ – पृथ्वी भेद, अस्थि, मेढ़े के सींग, चक्रमल के समान क्रमशः चारों प्रकार की अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषाय, तर्यंचगति की कारण होती हैं ।

धूलीरेहा वंसे गोमुत्ते तणुमले हु सारिच्छा ।
पच्चक्खाणगचउरो सव्वेदे मणुयगदिहेदु ॥151॥

अन्वय – धूलीरेहा वंसे गोमुत्ते तणुमले हु सारिच्छा पच्चक्खाण-गचउरो सव्वेदे मणुयगदिहेदु

अर्थ –धूलिरेखा, काष्ठ, गो मूत्र और शरीरमल के सदृश क्रमशः चारों प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय ये सभी मनुष्यगति की कारण हैं ।

जलरेहावेत्तेण य खुरुप्पहरिद्दरायसरिसा हु ।
संजलणं कोहादी चउरेदे देवगदिहेदु ॥152॥

अन्वय – जलरेहावेत्तेण य खुरुप्पहरिद्दरायसरिसा हु चउरेदे संजलणं कोहादी देवगदिहेदु ।

अर्थ – जल रेखा, बेंत, खुरपा, हल्दी के रंग के समान क्रमशः चारों संज्वलन क्रोध , मान, माया और लोभ, ये सभी कषाय देवगति की कारणभूत हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्सो हसणं कुव्वदि रदि पीदिं तह य अरदि अप्पीदिं ।
सोगं भयं च रोदणभीदिं तु दुगुच्छा[1] दुगच्छं खु ॥153॥

अन्वय – खु हस्सो हसणं रदि पीदिं तह य अरदि अप्पीदिं सोगं भयं रोदणभीदिं तु च दुगुच्छा दुगच्छं ।

अर्थ –हास्य कषाय हास्य को, रति कषाय प्रीति को, अरति कषाय अप्रीति को, शोक-रुदन को , भय - भय को और जुगुप्सा ग्लानि को पैदा करती है ।

थीपुंवेदणउंसयवेदा पुरिसित्थिउहय अहिलासं ।
कुव्वंति कमेणेदे हवंति खलु णोकसायक्खा ॥154॥

अन्वय – थीपुंवेदणउंसयवेदा कमेण पुरिसित्थिउहय अहिलासं कुव्वंति एदे खलु णोकसायक्खा हवंति ।

अर्थ – स्त्रीवेद, पुरुषवेद व नपुंसक वेद क्रमशः पुरुष, स्त्री और स्त्री-पुरुष दोनों में अभिलाषा उत्पन्न करते हैं । ये नो कषाय हैं ।

सच्चासच्चुभयमणं अणुभयमणमिदि वियाण मणचारी ।
वयणं च तहा णेयं इदि मणवयणाणि अट्ठविहं ॥155॥

अन्वय – सच्चासच्चुभयमणं अणुभयमणमिदि मणचारी वियाण वयणं च तहा णेयं इदि मणवयणाणि अट्ठविहं ।

अर्थ – सत्य , असत्य उभय और अनुभय ये चार प्रकार की मन की प्रवृत्ति जानों , इसी प्रकार चार प्रकार की वचन की प्रवृत्ति जानना चाहिए । इस प्रकार मनोयोग और वचनयोग दोनों के आठ प्रकार हैं ।

ओरालुरालमिस्सं वेयुव्वं पुण वियुव्वणा मिस्सं ।
आहाराहारयमिस्सं कम्मणकायमिदिसगं काया ॥156॥

अन्वय – ओरालुरालमिस्सं वेयुव्वं वियुव्वणा मिस्सं आहाराहार-यमिस्सं पुण कम्मणकायमिदिसगं काया ।

153. (1) जुगुप्सा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ – औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण इस प्रकार काय योग सात प्रकार का होता है।

णरतिरिये ओराल दु णिरये देवे वियुव्वणा जुगलं।
छट्ठगुणे आहार दु चादुग्गदिगे हु कम्मइयं ॥157॥

अन्वय – हु णरतिरिये ओराल दु णिरये देवे वियुव्वणा जुगलं आहार दु छट्ठगुणे दु कम्मइयं चादुग्गदिगे।

अर्थ –निश्चय से मनुष्य और तिर्यंच गति में औदारिक काययोग, औदारिकमिश्रकाययोग। नरक गति और देवगति में वैक्रियिक काययोग और वैक्रियिकमिश्रकाययोग छट्ठे गुणस्थानवर्ती प्रमत्तसंयत मुनिराज के आहारक, आहारकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग चारों गतियों में होता है।

एदे जोगा दुविहा असुहेदरभेददो दु पत्तेगं।
आहारभयपरिग्गहमेहुणसण्णा हु असुहमणं ॥158॥

अन्वय – एदे पत्तेगं जोगा हु असुहेदरभेददो हु दुविहा आहार-भयपरिग्गहमेहुणसण्णा असुहमणं।

अर्थ – ये प्रत्येक योग शुभ और अशुभ के भेद से दो प्रकार के हैं। आहार, भय , मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं रूप अशुभ मन हैं।

असुहतिलेस्साभावो पंचेंदियविसयलोलपरिणामो।
ईसाविसादहिंसापहुदिसु परिणाममसुहमणं ॥159॥

अन्वय – असुहतिलेस्साभावो पंचेंदियविसयलोलपरिणामो ईसाविसादहिंसापहुदिसु परिणाममसुहमणं।

अर्थ – तीन अशुभ लेश्या रूप भाव, पंचेन्द्रिय विषयों की लोलुपता रूप परिणाम ईर्षा, विषाद और हिंसादि परिणाम अशुभ मन हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्सादिणोकसाया रागो दोसो य मोहपहुदी हु ।
थूलो सुहुमो वेसिं भावो खलु होइ असुहमणं ॥160॥

अन्वय – हस्सादिणोकसाया रागो दोसो य मोहपहुदी हु थूलो सुहुमो वेसिं भावो खलु असुहमणं होइ ।

अर्थ – हास्यादि नव नो कषाय, राग , द्वेष और मोहादि ये स्थूल अथवा सूक्ष्म रूप भाव निश्चय से अशुभ मन हैं ।

अत्थत्थिभत्तकहा रायकहा पिसुणचोरबेरकहा ।
परपीडदेसकामकहादिसु वयणं वियाण असुहमिदि ॥161॥

अन्वय – अत्थत्थिभत्तकहा रायकहा पिसुणचोरबेरकहा परपीडदेसकामकहादिसु असुहमिदि वयणं वियाण ।

अर्थ – धन कथा, स्त्री कथा, भोजन कथा, अवनी पाल कथा, चुगली, चौर्य , बैर कथायें , दूसरों को दुःख देने वाली, राष्ट्र, काम आदि रूप कथायें, अशुभ वचन जानो ।

बंधनताडनछेदण मारणकिरियादिगा य जे सव्वे ।
ते कायव्वावारा णायव्वा असुहकायमिदि ॥162॥

अन्वय – बंधनताडनछेदण मारणकिरियादिगा य जे सव्वे कायव्वावारा इदि ते असुहकायं णायव्वा ।

अर्थ – बाँधना, पीटना, छेदना, मारना आदि रूप क्रियायें सभी जो शरीर के व्यापार हैं । उन्हें अशुभ काय जानना चाहिये ।

असुहादो जोगादो पुरिसा पावंति दारुणं दुक्खं ।
संसारपरिभमंतो सहजसरीरादिजणिदबहुभेयं ॥163॥

अन्वय – असुहादो जोगादो पुरिसा संसारपरिभमंतो सहजसरीरादिजणिदबहुभेयं दारुणं दुक्खं पावंति ।

अर्थ – अशुभयोग से जीव संसार में परिभ्रमण करता हुआ सहज (मानसिक, आगुन्तक) और शरीर आदि से उत्पन्न अनेक प्रकार के दुःखों को प्राप्त करता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवरि उत्तासुहजोगं सव्वं चइऊण सुहमणो होइ।
रयणत्तयजिणपूजा दाणाणुप्पेहणादि भावो हु ।।164।।

अन्वय – हु उवरि उत्ता सव्वं असुहजोगं चइऊण सुहमणो रयणत्तयजिणपूजा दाणाणुप्पेहणादि भावो सुहमणो होइ ।

अर्थ – ऊपर वर्णित किये सभी प्रकार के अशुभ योग का त्याग कर, रत्नत्रय, जिन पूजा, दान, 12 अनुप्रेक्षाओं आदि भावरूप होना चाहिये।

सपरहिदं जम्मिच्छदि हेदुं वयणं च जाण सुहवयणं ।
जिनपूजादिसु कुसलव्वावारो होइ सुहकायो ।।165।।

अन्वय – सपरहिदं जम्मिच्छदि हेदुं वयणं सुहवयणं जाण जिनपूजादिसु कुसलव्वावारो च सुहकायो होइ।

अर्थ – जो स्व पर का हित चाहने में कारण रूप वचन हैं उन्हें शुभ वचन जानो तथा जिनेन्द्र देव की पूजा आदि में कुशलता पूर्वक व्यापार करना शुभ काय है।

सुहजोगादो जीवा देविंदणरिंदपदविसंजणिदं ।
भोत्तूणकरणसोक्खं पच्छा भुंजंति णियसोक्खं ।।166।।

अन्वय – सुहजोगादो जीवा देविंदणरिंदपदविसंजणिदं भोत्तूण-करणसोक्खं पच्छा णियसोक्खं भुंजंति।

अर्थ –शुभोपयोग से जीव देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि पदों से युक्त होकर इन्द्रिय सुखों को भोग कर, पश्चात् आत्म सुख को भोगतें हैं।

भावासवं णिमित्तं कादूणं कम्मपुग्गलासवणं ।
दव्वासवो हु सो वि य बहुधामूलुत्तरुत्तरुत्तरपयडी ।।167।।

अन्वय – भावासवं णिमित्तं कादूणं कम्मपुग्गलासवाणं दव्वासवो हु सो वि बहुधामूलुत्तरु त्तरुत्तरपयडी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ –भावास्रव को निमित्त करके कर्म रूप पुद्गल का जो आना है वह द्रव्य आस्रव है , वह मूल, उत्तर और उत्तरोत्तर प्रकृतियों के भेद से अनेक प्रकार का है ।

अट्ठेव मूलपयडी उत्तरपयडी य अड्डचालसया ।
उत्तुत्तरपयडीयो असंखमेत्ता हु लोगाणं ॥168॥

अन्वय – हु अट्ठेव मूलपयडी उत्तरपयडी अड्डचालसया उत्तुत्तरपयडीओ य असंखमेत्ता लोगाणं ।

अर्थ – कर्म की मूल प्रकृतियाँ आठ हैं, उत्तर प्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस तथा उत्तरोत्तर प्रकृतियाँ असंख्यात लोक प्रमाण हैं ।

इति आस्रवतत्त्वम् ।

जीवादिगेण जेण दु चेदणभावेण बंधदे कम्मं ।
जीवो हु भावबंधो सो भणियो जिणवरिंदेहिं ॥169॥

अन्वय – जीवादिगेण जेण दु चेदणभावेण जीवो कम्मं बंधदे सो भावबंधो जिणवरिंदेहिं भणियो ।

अर्थ – जीवादिक विषय में होने वाले, जिस चेतन भाव से जीव कर्म को बांधता है वह भाव बंध है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया है ।

कम्मदव्वप्पदेसा परोप्परं (सव्वहा) पविस्संति ।
सो चेव दव्वबंधो णायव्वो तच्चकुसलेहिं ॥ 170॥

अन्वय – कम्मदव्वप्पदेसा परोप्परं (सव्वहा) पविस्संति तच्चकुसलेहिं सो चेव दव्वबंधो णायव्वो ।

अर्थ – कर्म रूप द्रव्य के प्रदेश (जीव प्रदेशों में) जो परस्पर में एकमेक होकर प्रवेश करते हैं , तत्त्व में कुशल मनुष्यों के द्वारा उसे द्रव्य बंध जानना चाहिये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो बंधो पयडिट्ठिदि अणुभागपदेसभेददो चदुधा ।
तेसिं हवंति जोगा पयडिपदेसा कसायदो सेसा ॥171॥

अन्वय – सो बंधो पयडिट्ठिदि अणुभागपदेसभेददो चदुधा तेसिं पयडिपदेसा जोगा सेसा कसायदो हवंति ।

अर्थ – वह बन्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से चार प्रकार का है। उसमें अर्थात् प्रकृति और प्रदेश बन्ध योग से होते हैं तथा शेष अर्थात् स्थिति और अनुभाग बन्ध कषाय से होते हैं।

इति बंधतत्त्वम् ।

सव्वेसिमासवाणं विणिरोहो संवरो हवे णामा ।
सो दुवियप्पो णेयो भावो पुण दव्वसंवरो चेइ ॥172॥

अन्वय – सव्वेसिमासवाणं विणिरोहो संवरो णामा हवे सो पुण दुवियप्पो भावो दव्वसंवरो चेई णेयो ।

अर्थ – समस्त कर्मों के आस्रव के रुक जाने का नाम संवर हैं और वह संवर द्रव्य संवर और भाव संवर के भेद से दो प्रकार का जानना चाहिये ।

वद समिदि पंच गुत्ति तिदयं दस धम्म वारसणुवेक्खा ।
बावीस परीसहजय पण चारित्तेदि संवरा भावा ॥173॥

अन्वय – वद समिदि पंच गुत्ति तिदयं दस धम्म वारसणुवेक्खा बावीस परीसहजय पण चारित्तेदि भावा संवरा ।

अर्थ – पाँच व्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, दस धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बावीस परीषहजय और पांच प्रकार का चारित्र ये भाव संवर हैं ।

सव्वेसिं दव्वाणं कम्माणणिरोहणो हवे णियमा ।
सो दव्व संवरो खलु णायव्वो जिणुवदेसेण ॥174॥

अन्वय – जिणुवदेसेण णियमा सव्वेसिं दव्वाणं कम्माण णिरोहणो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हवे सो खलु दव्व संवरो णायव्वो ।

अर्थ – जिनेन्द्र भगवान के उपदेश से, नियम से समस्त द्रव्य कर्मों का निरोध होना वह द्रव्य संवर जानना चाहिए ।

इति संवरतत्त्वम्

सुद्धेण जेण चेदणभावेण हु कम्म पुग्गलं गलइ ।
सो भावणिज्जरा पयडिणिज्जरा दव्वणिज्जरा होइ ।। 175।।

अन्वय – जेण सुद्धेण चेदणभावेण कम्म पुग्गलं गलइ सो भावणिज्जरा पयडिणिज्जरा दव्वणिज्जरा होई ।

अर्थ –जिस शुद्ध चेतन भाव से कर्म परमाणु नष्ट होते हैं वह भाव निर्जरा है तथा कर्म प्रकृतियों की निर्जरा द्रव्य निर्जरा है ।

सविपाका अविपाका सा दुविहा तत्थ होइ सविपाका ।
चादुग्गदिगाणं पि हु महव्वईणं हवे इयरा ।।176।।

अन्वय – सा सविपाका अविपाका दुविहा होइ तत्थ सविपाका चादुग्गदिगाणं पि हु इयरा महव्वईणं हवे ।

अर्थ – वह निर्जरा सविपाक और अविपाक के भेद से दो प्रकार की है । सविपाक निर्जरा चारों गतियों में होती है। किन्तु दूसरी अर्थात् अविपाक निर्जरा महाव्रतियों के होती हैं ।

सम्मत्तगहणकाले थूलवदे तह महव्वदग्गहणे ।
पढमकसायविसंजोजणे य मिच्छत्तियक्खवणे ।।177।।
इगिवीसकसायुवसमकाले उवसंतगे गुणट्ठाणे ।
खवगे य खीणमोहे जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा ।।178।।
इदि एगादसणिज्जरठाणे खविदूण सव्व कम्माणी ।
लोयग्गे चिट्ठेदि हु अणंतणाणाइगुणजुदो जीवो ।।179।।

अन्वय – सम्मत्तगहणकाले थूलवदे तह महव्वदग्गहणे पढमकसाय विसंजोजणे मिच्छत्तियक्खवणे इगिवीसकसायुवसमकाले च उवसंतगे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणट्ठाणे खवगे खीणमोहे य जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा इदि एगादसणिज्जरठाणे खविदूण सव्व कम्माणी जीवो अणंतणाणाइगुणजुदो हु लोयग्गे चिट्ठेदि ।

अर्थ – सम्यग्दर्शन प्राप्त करते समय अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि, देशव्रती अर्थात् श्रावक, महाव्रत ग्रहण करते समय, प्रथम अर्थात् अनन्तानुबन्धी कषाय की विसंयोजना के समय, मिथ्यात्वत्रय अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति का क्षय करते समय, अप्रत्याख्यान आदि 21 कषायों के उपशम करते समय, उपशांत मोह गुणस्थान, क्षपक श्रेणी, क्षीणमोह गुणस्थान, सयोग केवली और अयोग केवली जिन इन स्थानों में क्रम से असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।

इस प्रकार निर्जरा के ग्यारह स्थानों में सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके जीव अनंत ज्ञानादि गुणों से सहित होकर लोक के अग्र भाग में स्थित हो जाता है ।

इति निर्जरातत्त्वम् ।

सव्वेसिं कम्माणं खयकारणमप्पसुद्धपरिणामो ।
सो भावमोक्खदव्वविमोक्खो खलु जीवकम्मपुहकरणं ॥180॥

अन्वय – सव्वेसिं कम्माणं खयकारणमप्पसुद्धपरिणामो खलु सो भावमोक्खदव्वविमोक्खो जीवकम्मपुहकरणं ।

अर्थ – सभी कर्मों का क्षय करके आत्मा का जो शुद्ध भाव है वह भाव मोक्ष तथा जीव का कर्मों से पृथक् करना द्रव्य मोक्ष कहलाता है ।

तत्तो अप्पा खाइयसम्मत्तपहुदि अट्ठगुणसहिदो ।
लोयग्गं गत्ता खलु चिट्ठेदि सया अणंतसुही ॥181॥

अन्वय – तत्तो अप्पा खाइयसम्मत्तपहुदि अट्ठगुणसहिदो खलुलोयग्गं गत्ता अणंतसुही सया चिट्ठेदि ।

अर्थ – इसके पश्चात् आत्मा क्षायिक सम्यक्त्वादि आठ गुणों से सहित, लोकाग्र में जाकर सदाकाल के लिये अंनत सुख में स्थित हो जाता है ।

इति मोक्ष तत्त्वम् । इति सप्ततत्त्वनिरूपणम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तेव सत्त तच्चा संजुत्ता पुण्णपावजुगलेहिं ।
ते होंति णवपदत्था णाणपरिच्छेदिदं पदत्थो हु ।।182।।

अन्वय – उत्तेव सत्त तच्चा पुण्णपावजुगलेहिं संजुत्ता ते णवपदत्था होंति हु णाणपरिच्छेदिदं पदत्थो ।

अर्थ – ऊपर के सात तत्त्व, पुण्य और पाप से संयुक्त होकर वे नव पदार्थ होते हैं। ज्ञान के द्वारा जिनका अनुभव होता है ऐसे ये पदार्थ हैं ।

जीवाजीवपदत्था तह आसवबंधसंवरपदत्था ।
णिज्जरमोक्खपदत्था पुण्णपदत्थो ह जाण पावपदत्थो ।। 183।।

अन्वय – जीवाजीवपदत्था तह आसवबंधसंवरपदत्था णिज्जरमोक्खपदत्था पुण्णपदत्थो पावपदत्थो ह जाण ।

अर्थ – जीव पदार्थ, अजीव पदार्थ, आस्रव पदार्थ, बंध पदार्थ, संवर पदार्थ, निर्जरा पदार्थ, मोक्ष पदार्थ, पुण्य पदार्थ और पाप पदार्थ, ये नव पदार्थ जानों ।

संसारत्था जीवा सव्वे पुण्णा हवंति पावा य।
सव्वाणि पोग्गलाणि हु पुण्णाणि तहेव पावाणि ।।184।।

अन्वय – संसारत्था सव्वे जीवा पुण्णा पावा य तहेव सव्वाणि पोग्गलाणि हु पुण्णाणि पावाणि हवंति ।

अर्थ – संसार में स्थित सभी जीव पुण्य और पाप रूप होते हैं तथा सभी पुद्गल भी पुण्य और पाप रूप होते हैं ।

जे सुहभावेहिं जुदा ते जीवा होंति पुण्णसण्णा हु।
जे यासुहभावजुदा ते जीवा पावसण्णा हु ।।185।।

अन्वय – जे जीवा सुहभावेहिं जुदा ते पुण्णसण्णा होंति हु जे जीवा यासुहभावजुदा ते पावसण्णा हु ।

अर्थ – जो जीव शुभ भावों से युक्त हैं , वे जीव पुण्य संज्ञक हैं तथा जो अशुभ भाव से सहित हैं वे जीव पाप संज्ञक हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहणामं सुहगोदं सुहाउगं सादपुण्णकम्माणि।
एदेसिं इदराणि हु पावाणि हवंति कम्माणि ॥186॥

अन्वय – सुहणामं सुहगोदं सुहाउगं सादपुण्णकम्माणि हु एदेसिं इदराणि कम्माणि पावाणि हवंति।

अर्थ – शुभ नाम, शुभ गोत्र, शुभ आयु, सातावेदनीय पुण्य कर्म हैं। इससे भिन्न पाप कर्म हैं अर्थात् अशुभ नाम, गोत्र, आयु आदि पाप कर्म हैं।

पण छस्सत्तणवाणं अत्थाणं सद्दो य भेदा हु।
पुण अत्थदो य भेदा ण हवंति हु सव्व कालम्हि ॥187॥

अन्वय – हु पण छस्सत्तणवाणं अत्थाणं सद्दो य भेदा पुण अत्थदो य भेदा सव्व कालम्हि ण हवंति।

अर्थ – पदार्थों के पांच, छह, सात, नव प्रकार शब्दों की अपेक्षा भेद है किन्तु अर्थ (भाव) की अपेक्षा किसी भी काल मे भेद नहीं हैं।

इति नवपदार्थस्वरूपनिरूपणम्।

ग्रन्थान्तरोक्तपंचदशगाथाभिः पदार्थचूलिका कथ्यते –

11. ✳ जीवो परिणमदि जदा[1] सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तहा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो ॥

अर्थ – जीव जब शुभ भाव से परिणमन करता है तब शुभ रूप होता है। जब अशुभ भाव से परिणमन करता है तब अशुभ रूप और शुद्ध भाव से परिणमन करता है तब शुद्ध रूप होता है क्योंकि जीव परिणमन स्वभाव वाला है। **(प्र. सार 1-9)**

12. ✳ उवओगो जदि हि सुहो पुण्णं जीवस्स संचयं जादि।
असुहो वा तह पावं तेसिमभावे ण चयमत्थि ॥

अर्थ – उपयोग यदि शुभ हो तो जीव के पुण्य का संचय होता है और यदि अशुभ हो तो पाप का संचय होता है उन दोनों के अभाव में (पुण्य-पाप) संचय नहीं होता है। **(प्र. सा. 2 – 64)**

11✳. (1) जया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

13. ✳ जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणयारे।
जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स ॥

अर्थ – जो अर्हन्तों, सिद्धों तथा अनगारों को जानता है और श्रद्धा करता है तथा जीवों के प्रति अनुकम्पायुक्त है, उसका वह उपयोग शुभ है ।

(प्र. सा. 2– 65)

14. ✳ जदि देवदसु [1]यपूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा।

अर्थ – यति, देव और गुरु की पूजा में, दान, सुशीलों और उपवासादिकों में लीन आत्मा शुभोपयोगात्मक है ।

(प्र. सा. 1– 69)

15. ✳ जुत्तो सुहेण आदा तिरिओ वा माणुसो व देवो वा।
भूदो तावदि कालं लहइ सुहं इंदियं विविहं ॥

अर्थ – शुभ परिणाम से युक्त आत्मा तिर्यञ्च अथवा मनुष्य अथवा देव होता हुआ उतने समय तक अनेक प्रकार के इन्द्रिय सम्बन्धी सुख को पाता है । (प्र. सा. 1 – 70)

16. ✳ सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदियेहि लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तधा ॥

अर्थ– जो इन्द्रियों से प्राप्त होता है वह सुख पर सम्बन्ध युक्त, बाधा सहित, विच्छिन्न, बंध का कारण और विषम है इस प्रकार वह दुःख ही है। (प्र. सा. 1 – 76)

17. ✳ विसयकसायोगाढो दुस्सुदिदुच्चित्तदुट्ठगोट्ठि जुदो।
उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥

अर्थ– जिसका उपयोग कषाय और विषयों लीन है कुश्रुति,

13✳. (1) गुरु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुविचार और कुसंगति में लगा हुआ है तथा उन्मार्ग में लगा हुआ है, उसका वह उपयोग अशुभ हैं।

(प्र. सा. 2 – 66)

18. ✳ **दण्डति सल्लति लेस्सति गारवतिय अट्ट रुद्धझाणेहिं।**
सण्णा चउ हिंसादिहि सहियो असुहोवओगो त्ति ॥

अर्थ– मन, वचन, काय तीनों की अशुभ प्रवृत्ति (दण्डत्रय), मिथ्या, माया, निदान तीन शल्य, कृष्ण, नील, कापोत तीन अशुभ लेश्यायें, रसगारव, ऋद्धिगारव, सात गारव तीनगारव, आर्त्त, रौद्रध्यान से युक्त, चार संज्ञायें, हिंसादि पापों से युक्त उपयोग अशुभोपयोग कहलाता है।

19. ✳ **असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।**
दुक्खसहस्सेहि सया अभिंधुदो भमइ अच्चत्तं ॥

अर्थ– अशुभ के उदय से आत्मा हीन मनुष्य तिर्यंच या नारकी होकर हजारों दुःखों से निरन्तर पीडित होता हुआ संसार में अत्यन्त दीर्घ काल तक भ्रमण करता है।

(प्र– सा. 1 – 12)

20. ✳ **सुविदिद पदत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।**
समणो समसुहदुक्खो भणियो सुद्धोवओगो त्ति ॥

अर्थ– भली भांति जान लिया है पदार्थों को और सूत्रों को जिसने जो संयम और तप युक्त है, राग रहित है, समान है सुख दुःख जिसको ऐसा श्रमण शुद्धोपयोगी कहा गया है।

(प्र. सा. 1 – 14)

21. ✳ **अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं।**
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धुवयोगप्पसिद्धाणं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ– शुद्धोपयोग से निष्पन्न अरहंत सिद्ध भगवान को अतिशय रूप - सबसे अधिक, आत्मा से उत्पन्न, विषयातीत, अनुपम, अनन्त और अनन्तरित सुख प्राप्त होता है।

(प्र. सा. 1 – 13)

22. ✷ असुहोवओगरहियो सुहोवजुत्तो ण अण्णदवियम्हि।
होज्जं मज्झत्थोहं णाणप्पगमप्पगं झाए॥

अर्थ– जो अशुभोपयोग से रहित है और शुभोपयोग में भी जो उद्यत नहीं हो रहा है ऐसा मैं आत्मातिरिक्त अन्य द्रव्यों में मध्यस्थ होता हूँ और ज्ञानस्वरूप आत्मा का ही ध्यान करता हूँ।

(प्र. सा. 2 – 67)

23. ✷ धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जइ सुद्धसंपओगजुदो।
पावइ णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं॥

अर्थ– धर्म से परिणत स्वरूप वाला आत्मा यदि शुद्ध उपयोग सहित हो जाता है तो वह मोक्ष सुख को पाता है और यदि वह शुभ उपयोग वाला होता है तो स्वर्ग के सुख को प्राप्त करता है।

(प्र. सा. 1 – 11)

24. ✷ मिच्छतिये उवरुवरिं मंदत्तेणासुहोवओगो दु।
अवदतिये सुद्धुवओगसादगुवरुवरि तारतम्मेण॥

25. ✷ सुहउवओगो होदि हु तत्तो अपमत्तपहुदि खीणंते।
सुद्धुवओगजहण्णो मज्झुक्कस्सो य होदि त्ति॥

अर्थ– मिथ्यादृष्टि, सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में ऊपर-ऊपर मन्दता से अशुभ-उपयोग रहता है। उसके आगे असंयत सम्यग्दृष्टि, श्रावक और प्रमत्तसंयत इन तीन गुणस्थानों में परम्परा से शुद्ध उपयोग का साधक ऊपर-ऊपर तारतम्य से शुभ उपयोग रहता है। तदनन्तर अप्रमत्त आदि गुणस्थान से क्षीणकषाय पर्यंत इन छह गुणस्थानों में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से शुद्ध उपयोग वर्तता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवो सकसायत्तादो कम्माणं हि पुग्गले जोग्गे।
आदत्ते सो बंधो भणियो जिणमग्गकुसलेहिं ॥188॥

अन्वय – जीवो सकसायत्तादो कम्माणं जोग्गे पुग्गले आदत्ते सो बंधो हि जिणमग्गकुसलेहिं भणियो।

अर्थ – जीव,जो कषाय से कर्मों के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह बंध है। ऐसा जिन मार्ग में कुशल अर्थात् गणधर देव ने कहा हैं।

इति बन्धस्वरूपनिरूपणम्।

मिच्छत्ताविरदीओ पमादजोगा तहा कसाया य।
एदे चउ बंधस्स य हेदु इदि जाण णियमेण ॥189॥

अन्वय – मिच्छत्ताविरदीओ पमादजोगा तहा कसाया य इदि णियमेण एदे चउ बंधस्य य हेदु जाण।

अर्थ – मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और कषाय ये नियम से चार प्रकार के बंध के कारण जानों।

इति बन्धकारणस्वरूपनिरूपणम्।

बंधाणंहेदूणमभावादो भावदो णिज्जरादो सव्वेसिं।
कम्माणविप्पमोक्खो मोक्खो सो जोगि चरियम्हि ॥190॥

अन्वय – बंधाणंहेदूणम भावादो भावदो णिज्जरादो सव्वेसिं कम्माणविप्पमोक्खो मोक्खो सो जोगि चरियम्हि।

अर्थ – बंध के कारणों का अभाव होने से तथा सब कर्मों की निर्जरा होने से, कर्मों का अभाव हो जाना मोक्ष है, वह मोक्ष अयोगकेवली के चरम समय में होता है।

इति मोक्षस्वरूपनिरूपणम्।

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं च जाण वीमन्तु।
मोक्खस्स कारणं तद्दुविहं ववहारणिच्चयदो ॥ 191॥

अन्वय – वीमन्तु सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्रं च मोक्खस्य कारणं जाण ववहारणिच्चयदो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ – हे बुद्धिमान् ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये मोक्ष के कारण जानों। वह मोक्ष मार्ग व्यवहार और निश्चय के भेद से दो प्रकार का है ।

तच्चरुई सम्मत्तं तच्चाणं बोहणं तु सण्णाणं ।
असुहे सुहे च जाण णिवित्ति पवित्ति य सम्मचारित्तं ॥192॥

अन्वय – तच्चरूई सम्मत्तं तच्चाणं बोहणं तु सण्णाणं असुहे णिवित्ति सुहे च पवित्ति य सम्मचारित्तं जाण।

अर्थ – तत्त्वों की रूचि सम्यग्दर्शन है, तत्त्वों का जानना सम्यग्ज्ञान तथा अशुभ से निर्वृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति को सम्यग्चारित्र जानों ।

तं सम्मत्तं दुविहं तिविहं च हवेइ सुत्तणिद्दिट्ठं ।
सम्मण्णाणं पंचवियप्पं मइआदिभेदेण ॥193॥

अन्वय – सुत्तणिद्दिट्ठं तं सम्मत्तं दुविहं तिविहं च हवेइ सम्मण्णाणं मइआदिभेदेण पंचवियप्पं ।

अर्थ – सूत्र से निर्दिष्ट वह सम्यक्त्व दो प्रकार अर्थात् निसर्गज और अधिगमज तीन प्रकार अर्थात् औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक हैं। सम्यग्ज्ञान मति ज्ञान आदि के भेद से पाँच प्रकार का है।

वदसमिदिगुत्तिरूवं चरियं तेरस हु एस ववहारा ।
णिच्चयदो णिय अप्पा तत्तियमइओ मुणेयव्वो ॥194॥

अन्वय – हु वदसमिदिगुत्तिरूवं एस तेरस ववहारा चरियं णिच्चयदो णिय अप्पा तत्तियमइओ मुणेयव्वो ।

अर्थ – पांच व्रत, पांच समिति और तीन गुप्तियाँ ये तेरह प्रकार का चारित्र व्यवहार चारित्र है तथा निश्चय नय से अपनी आत्मा में तन्मय होना ही निश्चय चारित्र जानना चहिए ।

इति मोक्षहेतुस्वरूपनिरूपणम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसारजलहितारणकारणमब्भुदयमोक्खपरमसुहं ।
दादुं च णिमित्तं खलु णंदउ जिणसासणं सुइरं ।।195।।

अन्वय – खलु संसारजलहितारणकारणमब्भुदयमोक्खपरमसुहं दादुं च णिमित्तं सुइरं जिणसासणं णंदउ ।

अर्थ – संसार रूपी समुद्र से तारने में समर्थ, अभ्युदय स्वरूप मोक्ष रूप परम सुख को देने में निमित्त ऐसा जैन शासन चिरकाल तक आनन्दित अर्थात् जयवंत रहें ।

अरहंतसिद्धसाहू केवलिपण्णत्तधम्म इदि एदे ।
चत्तारो भवियाणं लोगुत्तमसरणमंगला होंति ।।196।।

अन्वय – अरहंतसिद्धसाहू केवलिपण्णत्तधम्म इदि एदे चत्तारो भवियाणं लोगुत्तमसरणमंगला होंति ।

अर्थ – अरहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म ये चार भव्य जीवों को लोक में उत्तम, शरण और मंगल रूप हैं ।

जो परमागमसारं परिभावइ चत्तरागदोसो हु ।
सो विरहिय परभावो णिव्वाणमणुत्तरं लहइ ।।197।।

अन्वय – हु जो चत्त रागदोसो परमागसमारं परिभावइ सो परभावो विरहिय णिव्वाणमणुत्तरं लहइ।

अर्थ – जो राग, दोष को छोड़कर परमागमसार ग्रन्थ का मनन चिंतन करता है वह परभावों को छोड़कर सर्वश्रेष्ठ निर्वाण को प्राप्त करता है ।

इदि परमागमसारं सुयमुणिणा कहियमप्पबोहेण ।
सुदणिउणा मुणिवसहा दोसचुदा सोहयंतु फुढं ।।198।।

अन्वय – इदि परमागमसारं अप्पबोहेण सुयमुणिणा कहियं सुदणिउणा मुणिवसहा दोसचुदा सोहयंतु फुढं ।

अर्थ – इस प्रकार परमागमसार अल्प ज्ञानी श्रुत मुनि के द्वारा कहा गया है (यदि कुछ त्रुटि हो तो) शास्त्र ज्ञान में निपुण, दोष रहित श्रेष्ठ मुनि शुद्ध करें ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सगकाले हु सहस्से विसयतिसट्ठी(1263) गदेदु विसवरिसे।
मग्गसिरसुद्धसत्तमि गुरुवारे गंथसंपुण्णो ॥199॥

अन्वय – सगकाले हु सहस्से विसयतिसट्ठी (1263) गदेदु विसवरिसे मग्गसिरसुद्धसत्तमि गुरुवारे गंथसंपुण्णो ।

अर्थ – शक् संवत के 1263 वर्ष व्यतीत होने पर मगसिर सुदी सप्तमी गुरुवार के दिन यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ ।

अणुवदगुरुबालेंदु महव्वदे अभयचंद सिद्धंती।
सत्थेभयसूरि पभाचन्द खलु सुयमुणिस्स गुरु ॥200॥

अन्वय – खलु अणुवदगुरुबालेंदु महव्वदे अमयचंद सिद्धंती सत्थेभयसूरि पभाचन्द सुयमुणिस्स गुरु ।

अर्थ – श्रावक अवस्था के गुरु बालेंदु, महाव्रत अवस्था के अभयचन्द्र सिद्धान्तिक, विद्या गुरु अभयसूरि , प्रभाचन्द्र, ये श्रुत मुनि के गुरु थे ।

सिरिमूलसंघदेसियगणपुत्थयगच्छकोडकुंदाणं ।
परमण्णइंगलेसरबलिम्हि जादस्स मुणिपहाणस्स ॥201॥
सिद्धंताहयचंदस्स य सिस्सो बालचन्दमुनिपवरो ।
सो भवियकुवलयाणामाणंदकरो सया जयउ ॥202॥

अन्वय – सिरिमूलसंघदेसियगणपुत्थयगच्छकोडकुंदाणं परमण्ण-इंगलेसरबलिम्हि जादस्स मुणिपहाणस्स । सिद्धंताहयचंदस्स य सिस्सो मुनिपवरो बालचन्दो सो भवियकुवलयाणामाणंदकरो सया जयउ ।

अर्थ – श्री मूल संघ, देशीयगण, पुस्तकगच्छ, कोण्डकुन्दान्वय की श्रेष्ठ इंगलेश्वरीबली में हुये मुनि प्रधान अभयचंद सिद्धान्त चक्रवर्ती के शिष्य मुनिप्रवर बालचन्द्र मुनि जो भव्य जीवों रूपी नील कमल को विकसित करने वाले हैं , वे सदा जयवंत रहें ।

सद्धागम परमागम तक्कागम णिरवसेस वेदी हु।
विजिदसयलण्णवादी जयउ चिरं अभयसूरिसिद्धंति ॥203॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्वय – हु सद्धागम परमागम तक्कागम णिरवसेस वेदी विजिद-सयलण्णवादी अभयसूरिसिद्धंति चिरं जयउ ।

अर्थ – व्याकरण, अध्यात्म शास्त्र, न्याय शास्त्र, आगम शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता, समस्त अन्य वादियों पर विजय प्राप्त करने वाले आचार्य अभयचन्द सिद्धान्तिक जयवंत हों ।

•[1] णयणिक्खेवपमाणं जाणित्ता विजियसयलपरसमओ ।
वरणिवइणिवहवंदियपयपम्पो चारुकित्तिमुणी ॥204॥

अन्वय – णयणिक्खेवमाणं जाणित्ता विजियसयलपरसमओ वरणिवइणिवहवंदियपयपम्पो चारुकित्तिमुणी ।

अर्थ – नय, निक्षेप और प्रमाण को जान कर जीत लिया है अन्य समस्त पर वादियों को जिन्होंने, श्रेष्ठ राजाओं के समूह कके द्वारा वंदित हैं चरण कमल जिनके ऐसे चारु कीर्ति मुनि हुए ।

•[1] वरसारत्तयणिउणो सुद्धप्परओ विरहिय परभावो ।
भवियाणं पडिबोहणपरो पहाचंदणाममुणी ॥ 205॥

अन्वय – वरसारत्तयणिउणो सुद्धप्परओ विरहिय परभावो भवियाणं पडिबोहणपरो पहाचंदणाममुणी ।

अर्थ – श्रेष्ठ रत्नत्रय में निपुण, शुद्ध आत्मा में लीन, अशुभ भावों से रहित , भव्य जीवों को संबोधित करने वाले प्रभा चन्द्र मुनि हुये।

श्री मच्छ्रुतमुनिविरचितपरमागमसारः समाप्तः ।

---

204 •[1] तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (भाग 4/420-21) में उल्लेखित श्रुत मुनि पट्टावली के आधार पर नन्दी संघ में श्रुतकीर्ति हुए थे, उनके शिष्य श्री चारूकीर्ति मुनि हुए थे। उनकी शिष्य परम्परा में अनेक गुणों से मण्डित श्रुत मुनि हुए थे।

205 •[1] **प्रभाचन्द** - तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (भाग 3/274) के अनुसार आप श्रुत मुनि के विद्या गुरु थे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक

श्री वर्णी दिग. जैन गुरुकुल, जबलपुर

श्री दिग. जैन अतिशय क्षेत्र, पपौरा जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org